पत्नी का सम्मान गृहस्थ का उत्थान

– श्रीराम शर्मा आचार्य

पत्नी का सम्मान-गृहस्थ का उत्थान



लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य



प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१३ मूल्य : १०.०० रुपये

दो शब्द

'महिला जागृति अभियान' वंदनीया माता जी के संपादकत्व में अनेक वर्षों तक प्रकाशित होती रही है। इस पत्रिका के माध्यम से आत्म विस्मृति के गर्त में पड़ी नारियों को उबारने और पुरुषों को उनकी गरिमा व महिमा समझाने का वे निरंतर प्रयास करती रही हैं। उनके इन लेखों की उपयोगिता और महत्व आज भी उतना ही अधिक है जितना कि तब था। आज हमारे बीच उनके सशरीर न रहने के कारण उनके ये लेख नारी जागृति एवं उत्थान की दिशा में हमें विशेष रूप से प्रेरणा एवं उत्साह प्रदान करेंगे।

महिला जागरण एवं उन्हें, उनके बलात् अपहृत किए गए गरिमामय सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित करना वंदनीया माताजी का स्वप्न रहा है और जीवन ध्येय भी। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर हम इस श्रद्धांजलि वर्ष में 'महिला जागृति अभियान' में प्रकाशित उनके लेखों को संकलित कर निम्नलिखित तीन पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।

१. पत्नी का सम्मान-गृहस्थ का उत्थान
२. नारी उत्थान में समाज का उत्तरदायित्व
३. मातृ शक्ति के उत्थान में उनकी स्वयं की भूमिका

आशा एवं विश्वास है कि परिजन एवं पाठक इन पुस्तकों का समुचित लाभ उठायेंगे।

अनुक्रम

नारी की गरिमा समझें और सम्मान दें

आज नारी को हमने घर की बन्दिनी, परदे की प्रतिमा और पैर की जूती बनाकर रख छोड़ा है और फिर भी जो मूक पशु की तरह सारा कष्ट, सारा क्लेष विष के घूँट की तरह पीकर स्नेह का अमृत ही देती है, उस नारी के सही स्वरूप तथा महत्व पर निष्पक्ष होकर विचार किया जाए तो अपनी ही आत्मा अपने धिक्कार को अब और अधिक नहीं सुनना चाहती । मानवता के नाते, सह धर्मिणी होने के नाते, राष्ट्र व समाज की उन्नति के नाते उसे उसका उचित स्थान दिया ही जाना चाहिए । अधिक दिनों उसके अस्तित्व, व्यक्तित्व तथा अधिकारों का शोषण राष्ट्र को ऐसे गर्त में गिरा सकता है जिससे निकल सकना कठिन हो जाएगा । अतः कल्याण तथा बुद्धिमत्ता इसी में है कि समय रहते चेत उठा जाए और अपनी इस भूल को सुधार ही लिया जाए ।

नारी का सबसे बड़ा महत्व उसके जननी पद में निहित है । यदि जननी न होती तो कहाँ से सृष्टि का संपादन होता और कहाँ से समाज तथा राष्ट्रों की रचना होती । यदि माँ न हो तो वह कौन-सी शक्ति होती जो संसार से अनीति एवं अत्याचार मिटाने के लिए शूरमाओं को धरती पर उतारती । यदि माता न होती तो यह बड़े-बड़े वैज्ञानिक, प्रकांड पंडित, अप्रतिम साहित्यकार, दार्शनिक, मनीषी, महात्मा एवं महापुरुष किसकी गोद में खेल-खेलकर धरती पर पदार्पण करते । नारी व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की जननी ही नहीं, वह जगज्जननी है । उसका समुचित सम्मान न करना अपराध है, पाप तथा अमनुष्यता है ।

नारी गर्भ धारण करती, उसे पालती, शिशु को जन्म देती और तब तक, जब तक कि वह अपने पैरों पर नहीं चल पाता और अपने हाथों से नहीं खा पाता, उसे छाती से लगाए अपना जीवन रस पिलाती रहती है । अपने से अधिक सन्तान की रक्षा एवं सुख-सुविधा में निरत रहती है । खुद गीले में सोती और शिशु को सूखे में सुलाती है । उसका मल-मूत्र साफ करती है । उसको साफ-सुथरा रखने में अपनी सुध-बुध भूली

रहती है । इस सम्बन्ध में हर मनुष्य किसी न किसी नारी का ऋणी है । ऐसी दयामयी नारी का उपकार यदि तिरस्कार तथा उपेक्षा से चुकाया जाता है तो इससे बड़ी शर्म की बात और क्या हो सकती है ?

पत्नी के रूप में उसका महत्त्व कुछ कम नहीं है । नारी पुरुष की अर्धांगिनी है । पत्नी के बिना पति का व्यक्तित्व पूरा नहीं होता । उसी की महिमा के कारण पुरुष गृही होने का गौरव पाता है और पत्नी ही वह माध्यम है जिसके द्वारा किसी की वंश परम्परा चलती है । यह पत्नी की ही तो उदारता है कि वह पुरुष के पशुत्व को पुत्र में बदलकर उसका सहारा निर्मित कर देती है । पुरुष के प्यार, स्नेह तथा उन्मुक्त आवेगों की अभिव्यक्ति करने में पत्नी का कितना हाथ है इसे सभी जानते हैं । परेशानी, निराशा, आपत्ति अथवा जीवन के निविड़ अन्धकार में वह पत्नी के सिवाय कौन है जो अपनी मुस्कानों से उजाला कर दिया करे-अपने प्यार तथा स्नेह से हृदय में नव जीवन जगाकर आश्वासन प्रदान करता रहे । पत्नी का सहयोग पुरुष के सुख में चार चाँद लगा देता है और दुःख में उसकी साझीदार बनकर हाथ बँटाया करती है । दिन भर बाहर काम करके और तरह-तरह के संघर्षों से थककर आने पर भोजन, स्नान तथा आराम-विश्राम की व्यवस्था पत्नी के सिवाय और कौन करेगा ?

पुरुष एक उद्योगी तथा उच्छृंखल इकाई है, परिवार बसाकर रहना उसका सहज स्वभाव नहीं है । यह नारी की ही कोमल कुशलता है जो उसे पारिवारिक बनाकर प्रसन्नता की परिधि में परिभ्रमण करने के लिए लालायित बनाए रखती है । पत्नी ही पुरुष को उद्योग-उपलब्धियों की व्यवस्था एवं उपयोगिता प्रदान करती है । पुरुष पत्नी के कारण ही गृहस्थ तथा प्रसन्न चेता बनकर सामाजिक भद्र जीवन बिताया करता है । पत्नी रहित पुरुष का समाज में अपेक्षाकृत कम आदर होता है । परिवारों में सामाजिकता का आदान-प्रदान उन्हीं के बीच होता है जो पारिवारिक तथा पत्नीवन्त होते हैं । पत्नी की परिधि पुरुष को अनेक प्रकार की दुष्प्रवृत्तियों से बचाये रहती है । पत्नी के रूप में नारी का यह महत्त्व कुछ कम नहीं है । यदि आज संसार से नारी का सर्वथा अभाव हो जाए तो

कल से ही पुरुष पशु हो उठे, सारी समाज व्यवस्था उच्छृंखल हो उठे और सृष्टि का यह व्यवस्थित स्वरूप अस्त-व्यस्त हो जाए ।

नारी को अर्धांगिनी ही नहीं सह-धर्मिणी भी कहा गया है । पुरुष का कोई भी धर्मानुष्ठान पत्नी के बिना पूरा नहीं होता । बड़े-बड़े राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों में भी यजमानों को अपनी पत्नी के साथ ही बैठना पड़ता था और आज भी षोडश-संस्कारों से लेकर तीर्थ स्नान तक का महत्व तभी पूरा होता है जब गृहस्थ पत्नी को साथ लेकर पूरा करता है । किसी भी गृहस्थ को सामान्य दशा में अकेले धर्मानुष्ठान करने का निषेध है । इतना ही नहीं भारतीय धर्म में तो नारी को और भी अधिक महत्व दिया गया है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवताओं का क्रिया कलाप भी उनकी सह-धर्मिणियों-सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती के बिना पूरा नहीं होता । कहीं किसी स्थान पर भी यह अपनी शक्तियों रहित नहीं पाये जाते । विद्या, वैभव तथा वीरता की अधिष्ठात्री देवियों के रूप में भी नारी की ही प्रतिष्ठा व्यक्त की गई है और उसे शारदा, श्री तथा शक्ति के नामों से पुकारा गया है ।

नारियों की धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवाओं के लिए इतिहास साक्षी है जिससे पता चल सकता है कि नारी पुरुष से किसी क्षेत्र में भी पीछे नहीं है । अनुसूया, गार्गी, मैत्रेयी, शतरूपा, अहिल्या, मदालसा आदि धार्मिक, सीता, सावित्री, द्रौपदी, दमयन्ती आदि पौराणिक तथा पद्मावती, वीरबाला, वीरमती, लक्ष्मीबाई, निवेदिता, कस्तूरबा प्रभृति नारियाँ राष्ट्रीय व सामाजिक क्षेत्र की प्रकाशवती तारिकाएँ हैं । वेद तथा इतिहास के ग्रन्थों का अनुशीलन करने से पता चलता है कि प्रारम्भिक समय में जब साधनों की कमी होने से पुरुषों को प्राय: जंगलों से आहार सामग्री प्राप्त करने तथा आत्म रक्षा के कामों में अधिक ध्यान देना पड़ता था तब व्यवस्था, ज्ञान-विज्ञान तथा सभ्यता-संस्कृति सम्बन्धी विषयों में अधिकांश काम नारियाँ ही किया करती थीं । इसलिए अनेक तत्ववेत्ता अन्वेषक मनुष्यों की आदिम सभ्यता की जन्मदात्री नारी को ही मानते हैं । ऐसी महत्त्वपूर्ण तथा जीवनदायिनी नारी

की उपेक्षा करना कहाँ तक ठीक है यह एक विचारणीय विषय है ।

नारी अपने विभिन्न रूपों में सदैव मानव जाति के लिए त्याग, बलिदान, स्नेह, श्रद्धा, धैर्य, सहिष्णुता का जीवन बिताती रही है । नारी धरा पर स्वर्गीय ज्योति की साकार प्रतिमा मानी गई है । उसकी वाणी जीवन के लिए अमृत स्रोत है । उसके नेत्रों में करुणा, सरलता और आनन्द के दर्शन होते हैं । उसके हास में संसार की समस्त निराशा और कटुता मिटाने की अपूर्व क्षमता है । नारी संतप्त हृदय के लिए शीतल छाया और स्नेह सौजन्य की साकार प्रतिमा है । नारी पुरुष की पूरक सत्ता है । वह मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है, उसके बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है । नारी ही उसे पूर्ण बनाती है । जब पुरुष का जीवन अंधकार युक्त हो जाता है तो नारी की संवेदना पूर्ण मुस्कान उसमें उजाला बिखेर देती है । पुरुष के कर्तव्य शुष्क जीवन की वह सरसता तथा उजड़ी जिन्दगी की हरियाली मानी गई है । नारी के वास्तविक स्वरूप पर विचार करने से विदित होता है कि वह पुरुष के लिए पूरक सत्ता ही नहीं वरन् उर्वरक भूमि के रूप में भी उसकी उन्नति, प्रगति तथा कल्याण का साधन बनती है । स्वयं प्रकृति ही नारी के रूप में सृष्टि के निर्माण, पालन-पोषण और संवर्धन का कार्य कर रही है ।

नारी को साथ लिए बिना प्रगति असम्भव

कोई भी स्थिति या अवस्था प्रत्यक्ष लाभदायक तथा उपयोगी सिद्ध होती हो और वह आसानी से बिना कुछ अधिक श्रम किए लाई जा सके, फिर भी उस ओर ध्यान न दिया जाता हो तो यह सबसे बड़ी मूर्खता होगी । उदाहरण के लिए घर में बने हुए शांत और अच्छे वातावरण को केवल इस हठ के कारण नष्ट-भ्रष्ट किया जाय कि इससे घर वालों पर अपना रौब जमेगा तो यह अमृत में विष घोलने जैसी कुचेष्टा ही होगी । केवल रौब जमाने के लिए ठीक तरह से काम कर रहे घर के सदस्यों को तंग करना और वहां की शान्ति नष्ट करना उद्दण्डता नहीं, व्यक्ति की विक्षिप्तता का भी परिचायक होगा । सब लोग इस तरह

के विक्षिप्त न हों, पर नारी की जो स्थिति है, उसकी दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण दुर्दशा है, उसके कारणों पर विचार किया जाय तो तमाम पुरुषों पर इस तरह की कलंक कालिमा पुती हुई है ।

नारी की वर्तमान स्थिति दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण है, इसमें कोई दो राय नहीं है । दयनीय तो इसलिए कि उसे मनुष्योचित अधिकारों से वंचित कर दिया गया है । पशुओं की तरह उसके गले में जंजीर, पाँवों में बेड़ियाँ और चार दीवारी में कैद रहने के प्रतिबन्ध हैं और दुर्भाग्य इसलिए कि सब तरह से उस पर लगे प्रतिबन्धों का अनौचित्य सिद्ध होने के बाद भी उन्हें स्वाभाविक ही समझा जा रहा है । सब जानते हैं कि नारी-योग्यता, प्रतिभा, क्षमता और सामर्थ्य में पुरुष से किसी भी तरह उन्नीस नहीं है, फिर भी उसे घर तक ही सीमित रहने, बच्चे पैदा करने और घर की रखवाली करने भर के लिए उपयोगी समझा जाता है । इतिहास, घटनाओं और विचारों से भी उसकी क्षमताओं का परिचय मिलने के बावजूद भी उसे न जाने क्यों विकसित नहीं होने दिया जाता ? प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि नारी उसकी सहयोगी बनने के स्थान पर उसके लिए एक अनचाहा और उबाऊ बोझ ही सिद्ध होती है । पूछा जाना चाहिए कि सहयोगी को बोझ बना लेने के लिए जिम्मेदार कौन है ? प्राय: लोग रटा-रटाया उत्तर देते हैं कि यह हमेशा से चला आ रहा है ।

पहली बात तो यह है कि इस तरह के उत्तर में अपनी कमजोरियों को ही ढोया जाता है । अन्यथा प्राचीनकाल से यह स्थिति और परम्परा रूप में नारी का दर्शन इसी रूप में होता तो भी क्या हम प्राचीनकाल की सभी बातों को इसी कारण चलते रहने दे रहे हैं कि वे पुरानी हैं । आश्रम धर्म, संस्कार, यज्ञ, कर्मकाण्ड, दान, समाज-व्यवस्था आदि के प्राचीन रूप अब लुप्त होते जा रहे हैं और लोग इसी में प्रगति का गौरव मानते हैं । प्राचीन होने की बात यहाँ तो आड़े नहीं आती, फिर नारी के सम्बन्ध में ही उसकी दुहाई क्यों दी जाने लगती है ?

विवेक की दृष्टि से विचारपूर्वक देखा जाय तो असलियत कुछ

और ही सामने आती है और सिद्ध होता है कि इस अति महत्वपूर्ण विषय को प्रत्येक वर्ग किसी न किसी स्वार्थ के कारण उपेक्षित किए हुए है । उनमें सबसे बड़ा अहंकार है-पुरुष का अहंकार । यह तो सभी मानते हैं कि विचारशीलता जहाँ भी उत्पन्न होगी और विकास के चरण जहाँ भी बढेंगे, वहीं उचित को मानने और अनुचित को इन्कार करने की बात भी उत्पन्न होगी । नारी चूँकि अविकसित है, इसलिए वह पुरुष की हर उचित-अनुचित बात को मान लेती है और इससे पुरुष का अहं तुष्ट होता चलता है । नारी यदि विकसित हो तो पुरुष का अहंकार उसकी हर बात ज्यों की त्यों स्वीकार न करने के रूप में आहत हो सकता है और इस छोटी-सी बात के लिए पुरुष वर्ग नारी को अविकसित ही देखना अधिक पसन्द करता है ।

दीखने में यह बात भले ही छोटी-सी लगती हो, पर अहंकार की भावना इतनी प्रबल और दुष्ट है कि वह बड़ी से बड़ी हानि की भी परवाह नहीं करती । रावण और कंस जैसे दैत्यों से लेकर चंगेजखाँ, मुहम्मद गौरी और हिटलर तक इतिहास के कलंकित व्यक्तियों ने केवल अहंकार वशीभूत होकर बड़े-बड़े अत्याचार किए और उत्पात मचाए । इनका अहंकार विवेक को पूरी तरह समाप्त कर चुका था, पर सामान्य-जन तो अहंकार की अपेक्षा लाभ और उपयोगिता के पक्ष को महत्व देते हैं । यदि विचारपूर्वक सोचें तो निश्चय ही उन्हें अपनी रीति-नीति में परिवर्तन करना पड़ेगा ।

व्यक्तियों से ही वर्ग और समाज बनता है । पर जब समूह की दृष्टि से देखा जाय तो वहाँ अहंकार के अतिरिक्त स्वार्थ भी कारण रूप में विद्यमान मिलेगा । उदाहरण के लिए कलाकार इस स्वार्थ के कारण स्थिति को यथावत् बनाये रखना चाहता है कि उसे नारी को अश्लील और भद्दे रूप में उभार कर व्यावसायिक लाभ कमाने की छूट मिले । लेखक, चित्रकार, मूर्ति-शिल्पकार, गायक और अभिनेता आदि सभी इस वर्ग में आ जाते हैं, जो नारी के शरीर को खिलौना बनाकर पेश करने में अपना लाभ देखते हैं और दोनों हाथों से धन बटोरने की संभावना भी ।

व्यापारियों को अपनी वस्तुओं के प्रचार का सस्ता उपाय मिल जाता है और अर्ध नग्न देह के चित्रों सहित प्रचारित की जाने वाली वस्तुएँ लोगों का ध्यान भी आकर्षित करती है । समाज इसलिए चुप रहता है कि लोगों में असन्तोष की भावनाएँ वैसे ही बढ़ रही हैं, नारियों में जागृति आई तो वे भी अपनी स्थिति से असन्तुष्ट हो उठेंगी । यहाँ तक कि स्वयं नारियाँ भी इसी स्थिति में अपना भला देखती हैं । ये समझती हैं कि पिंजड़े में बन्द ही सही, पर निश्चिन्त तो रहती हैं । सारी जिम्मेदारियाँ, सारे उत्तदायित्व और सभी बाहरी कार्य पुरुष निबटा लेता है । स्वयं की श्मशान शान्ति को क्यों भंग किया जाय और क्यों मुक्ति व जागरण की गुहार मचाई जाय ।

जो भी हो, समाज का हर वर्ग चाहे पुरुष हो, चाहे व्यापारी हो, चाहे नौकरी-पेशा, चाहे लेखक हो, चाहे चित्रकार इस विडम्बना को यथावत् चलने देने में ही अपना स्वार्थ अनुभव करते हैं या अपने अहं की तुष्टि पाते हैं । और केवल 'अहं' को तुष्ट करने के लिए यह स्थिति बनी नहीं रहनी चाहिए तथा नारी की क्षमता और शक्ति का उपयोग समाज को आगे बढ़ाने में करना चाहिए ।

कहा जाता है कि नारी का प्रधान कार्यक्षेत्र घर और पुरुष का बाहर है । पर यह कोई 'लक्ष्मण रेखा' नहीं है न ही इसमें नारी को बन्धनों से जकड़ने की गुंजायश । सुविधा और व्यवस्था की दृष्टि से ही इस कार्यक्षेत्र का विभाजन किया गया है । आवश्यकता पड़ने पर पुरुष भी घर का काम कर सकते हैं और स्त्रियाँ भी आजीविका उपार्जन में लग सकती हैं । लेकिन दोनों ही वर्गों के लिए एक दूसरे के काम में हाथ बँटाना अशोभनीय और लज्जाजनक-सा समझा जाता है । घरेलू नौकर के रूप में भोजन बनाने, बर्तन साफ करने तथा बच्चों को खिलाने वाले पुरुषों की बात जाने भी दें तो भी सामान्य व्यक्ति पत्नी की हारी-बीमारी में घर का काम करना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं । बात यह नहीं है कि काम बुरा है, पर पुरुष के मन में नारी के प्रति हीन दृष्टिकोण जमा हुआ है, इसलिए उसके काम भी छोटे दिखाई देते हैं और इसी

कारण कई असुविधाएँ होने के बावजूद भी पुरुष घरेलू काम करने से कतराते दिखाई देते हैं ।

इसी प्रकार आवश्यकता या अन्य कारणों से महिलाएँ जब घर से बाहर कदम निकालती हैं, तो भी उन्हें उपहास की दृष्टि से देखा जाता है । लोग कहने लगते हैं-आज के जमाने में महिलाएँ पुरुषों की प्रतिद्वन्द्वी बन गई हैं और उन्हें पीछे खींचना चाहती हैं । जिन महिलाओं में वस्तुतः इस तरह की मनोवृत्ति हो, उनकी बात अलग है, पर विवशता या आवश्यकता की दृष्टि से जो स्त्रियाँ स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न कर रही हों, उन्हें निरुत्साहित नहीं किया जाना चाहिए । न ही यह सोचना चाहिए कि ये कार्य केवल पुरुषों की ही जायदाद है और स्त्रियों में नाम मात्र को भी प्रतिभा योग्यता नहीं है । वे स्वावलम्बी हो ही नहीं सकतीं ।

दास युग की इस मान्यता ने समाज को बड़ी हानि पहुँचाई है । जब नारी को अयोग्य, निर्बल, आश्रित और असमर्थ मान लिया गया हो अथवा बना दिया गया हो तो अवरोध न केवल नारी के आगे बढ़ने में उत्पन्न होगा, वरन् उसका असर समूचे समाज पर पड़ेगा । बोझ, भार से लगाकर पंगुता तक का अभिशाप केवल नारी को ही नहीं, पूरे समाज को, जिसमें पुरुष वर्ग भी आ जाता है, उसे भी भोगना पड़ेगा । एक छोटा-सा उदाहरण लिया जाय । बाजार से घरेलू उपयोग का-रोजमर्रा का सामान साग-सब्जियाँ, मसाले आदि स्त्रियाँ खरीद कर ला सकती हैं, पर परम्परागत रूप से पर्दा रखने वाले परिवारों में यह काम पुरुषों को ही करना पड़ता है । एक तो अधिक कोई काम न होने से महिलाएँ खाली रहती हैं, उनका भी समय नष्ट होता है-दूसरे पुरुष को उपार्जन के अतिरिक्त बाहर से आवश्यक सामान लाने में भी अपना समय खपाना पड़ता है । बर्बादी दोनों के ही समय की होती है और कारण इतना मात्र कि स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकल सकतीं, चूँकि इसी में वहाँ कुलीनता सुरक्षित समझी जाती है ।

इसी प्रकार सुशिक्षित और योग्य महिलाएँ चाहें तो अपने बच्चों को स्वयं पढ़ा सकती हैं, उनकी ठीक प्रकार से देखरेख कर सकती है । पर

कन्या शिक्षा को अनावश्यक समझने के कारण अधिकांश घरों में स्त्रियाँ पढ़ी लिखी नहीं रहतीं । घर का काम-काज और बच्चों की देखभाल तो वे कर लेती हैं, पर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके इन कार्यों में अभीष्ट दक्षता परिलक्षित होती होगी या बच्चों के पालन पोषण के साथ-साथ उनके निर्माण की आवश्यकता भी पूरी हो जाती है ।

स्त्रियों में योग्यता का अभाव इन विडम्बनाओं का कारण नहीं है । स्त्रियाँ योग्य हैं और पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर वे समाज निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण के कार्य में भाग ले सकती हैं । तथ्यों पर दृष्टिपात किया जाय तो इतिहास में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं ने ही अधिक उल्लेखनीय कर्म किया । स्वतंत्र रूप से तो वे अपनी प्रतिभा तथा क्षमता का उपयोग करती ही रही हैं, युग की दिशा को मोड़ने वाले महापुरुषों के निर्माण का श्रेय भी उनकी माताओं को दिया जाता है और उन महामानवों की अपेक्षा उनकी माताओं को ही अधिक प्रशंसा योग्य पाया जाता है ।

सामाजिक दृष्टि से भी देखें तो मालूम पड़ेगा कि जिन देशों में स्त्रियों को मनुष्योचित अधिकार मिले हुए हैं, वे वहाँ पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर राष्ट्र निर्माण के यज्ञ में लगी हुई हैं और कितने ही क्षेत्र स्वयं महिलाओं ने संभाल कर पुरुषों को राष्ट्र के अन्य मोर्चों पर निश्चिन्तता पूर्वक काम करने जैसी परिस्थितियाँ बना दी हैं । युगोस्लावाकिया की महिलाएँ उस देश की कृषि-व्यवस्था सँभालती हैं और पुरुष कारखाने, दफ्तर, फौज तथा पुलिस का काम देखते हैं, उन्हें खेती या पशुपालन जैसे काम देखने की जरा भी जरूरत नहीं पड़ती । इसी प्रकार रूस, चीन आदि देशों में महिलाएँ राष्ट्रीय-सम्पदा बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं । रूस में शिक्षा-व्यवस्था अधिकांशतः महिलाओं द्वारा ही संचालित की जाती है । स्कूलों, अस्पतालों एवं स्वास्थ्य संस्थाओं में पुरुषों की संख्या बहुत कम रहती है । जापान की महिलाएँ घरेलू उद्योग धन्धों का विकास करने में पुरुषों से एक कदम

भी पीछे नहीं हैं । वे जापानी अर्थ व्यवस्था की इस रीढ़ को मजबूत बनाने में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर संलग्न हैं । जर्मनी में भी कल-कारखानों को सँभालने के लिए महिलाएँ, पुरुष इंजीनियरों, व्यवस्थापकों और कारीगरों के समान ही योग्य सिद्ध हो रही हैं । कनाडा, अमेरिका, ब्रिटेन जैसे देशों में दुकानें चलाने और उत्पादन की विक्रय-व्यवस्था के लिए महिलाएँ-पुरुषों से कम योग्य सिद्ध नहीं हुई हैं ।

दूर क्यों ? अपने ही देश के उन प्रान्तों तथा क्षेत्रों में, जहाँ महिलाओं पर अपेक्षाकृत कम प्रतिबन्ध हैं, महिलाओं की योग्यता का लाभ पूरे परिवार ही नहीं, समाज को भी सम्पन्नता, समृद्धि और विकास के रूप में मिले हैं । कहने का अर्थ यह कि अहंकार या स्वार्थपरता के कारण नारी के विकास में रुकावटें डालना अनुपयुक्त है, अनुचित है । यह बात पूरे समाज को नोट कर लेनी चाहिए कि नारी को साथ लिए बिना नर रंचमात्र भी आगे बढ़ नहीं सकता, न समाज ही प्रगति कर सकेगा ।

पुरुष अपना कर्तव्य निबाहें

यह तथ्य भली प्रकार हृदयंगम कर लिया जाना चाहिए कि हजार वर्ष के अज्ञानान्धकार युग की फैलाई गई विकृतियों को, अवांछनीयताओं को, साफ करने के लिए ऐसी मजबूत झाड़ू चाहिए जो कचरे के ढेर को कुरेदने, उखाड़ने, हटाने में समर्थ हो सके । यह झाड़ू एक-दो सीकों से नहीं बनेगी, उसमें सैकड़ों तीलियों का सम्मिलित सहयोग होना चाहिए । इतना महत्वपूर्ण किन्तु इतना कठिन प्रयोजन संघ शक्ति का उदय किए बिना और किसी भी तरह सम्भव नहीं हो सकता । छुटपुट वैयक्तिक प्रयत्नों की कुछ बूँदें इस जलते तवे को ठण्डा करने में कुछ कारगर सिद्ध न होंगी । इस दावानल को शांत करने के लिए घटाओं की अनवरत बूँद-वर्षा ही कारगर होगी । नारी को पद दलित स्थिति से उबारकर उसको सहज स्वाभाविक उच्च स्थान पर पहुँचाने के

युगान्तरीय प्रयत्न संघ शक्ति के सहारे ही सफल हो सकेंगे ।

राष्ट्र के स्वंतत्रता आन्दोलन में लाखों ने बलिदान दिए, पर जो अग्रणी रहे, यश उन्हीं को दिया जाता रहा, श्रेय उन्हीं ने पाया । यह उचित भी था, वातावरण बनाने, आगे रहने और शुभारंभ कराने में असाधारण आत्म-बल चाहिए । उपहास, व्यंग, असहयोग और विरोध रहते हुए भी जो बढ़े, वे मनस्वी इसी योग्य हैं कि उन्हें भरपूर सराहा जाय । चलती गाड़ी पर तो कोई भी सवार हो सकता है । बहती नदी में तो तिनका भी बहने लगता है ।

आरंभ यहीं से होना है कि जाग्रत आत्माएँ स्वयं आगे बढ़ें । अपने साहस का परिचय अपने निजी परिवार में उस तरह का वातावरण बनाकर दें, जिसकी मांग नवयुग ने प्रत्येक विवेकशील और न्यायनिष्ठ व्यक्ति से की है । घर परिवार में नारी को उचित सम्मान और सहकार मिलना चाहिए । उन्हें अपने पिछड़ेपन से पिण्ड छुड़ाने और आगे बढ़ने के लिए अवसर देना चाहिए और साधन जुटाने चाहिए, साथ ही उस संघ शक्ति के साथ मिलकर नई चेतना ग्रहण करने और नई प्रेरणा प्रस्तुत कर सकने की स्थिति में पहुँचना चाहिए । इसके लिए यह आवश्यक है कि वह अभियान में सम्मिलित होकर बहुत कुछ पाने और बहुत कुछ देने का दुहरा लाभ प्राप्त कर सकें । उन्हें महिला जागरण अभियान की सदस्या बनने से लेकर प्रत्येक साप्ताहिक सत्संग में सम्मिलित हो सकने की सुविधा दी जानी चाहिए । वस्तुस्थिति से परिचित न होने के और झिझक एवं आत्महीनता में ग्रसित होने के कारण यदि उनमें इसके लिए आवश्यक उत्साह एवं साहस न हो तो नारी को यह देना प्रत्येक विवेकशील पुरुष का काम है ।

इसके लिए पुरुष वर्ग को अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करना होगा । परिवर्तन हुआ, इसके कुछ महत्वपूर्ण चिह्न प्रकट होने चाहिए । दृष्टिकोण बदला, इसके कुछ प्रमाण प्रस्तुत होने चाहिए । हमारे घरों में पिछली रीति-नीति में प्रारंभिक परिवर्तन यह होना चाहिए कि पुरुष वर्ग अपने घर की स्त्रियों को घूँघट की निरर्थकता समझाएँ । स्वयं

आगे बढ़कर धीरे-धीरे करके उसे कम करते चलने और जैसे-जैसे बड़े-बूढ़ों को सह्य होता चले, वैसे-वैसे उसे समाप्त कर देने का प्रोत्साहन दें। पर्दे के प्रतिबन्ध से मुक्त हुए बिना नारी संगठन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सकती।

हर विचारशील व्यक्ति अपने-अपने घरों में महिलाओं को प्रेरित करे, यह आवश्यक तो है, किन्तु इतना मात्र पर्याप्त नहीं। कार्य बड़ा है इसलिए उसे बड़े पैमाने पर ही करना होगा। इसके लिए संगठित रूप से प्रयास किए जाने चाहिए। बड़े कार्य सदा संगठित रूप से ही होते रहे हैं। भगवान राम ने लंका विजय के लिए रीछ वानरों की सेना संगठित की थी। भगवान कृष्ण ने गोवर्धन उठाने के लिए ग्वालबालों को लाठी का सहारा लगाने के लिए सहमत किया था। महाभारत लड़ने के लिए कृष्ण ने सुदूर देशों के शक्तिशाली लोगों की सेनाएँ पाण्डवों के पक्ष में खड़ी की थीं। समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी के लिए साधन जुटाने के लिए सैकड़ों महावीर स्थान बनाए और प्रयुक्त किए थे। गुरु गोविन्द सिंह ने एक बड़ी सेना संगठित की थी। जन मानस का परिष्कार करने के लिए भगवान बुद्ध ने लाखों भिक्षु-भिक्षुणी एकत्रित एवं प्रशिक्षित किए थे। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह संग्राम लोक शक्ति को साथ लेकर ही जीता था।

नारी पुनरुत्थान जैसे आधी जनसंख्या को गहरे गर्त में से उठा कर प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचाने का कार्य संगठित शक्ति से ही हो सकता है। विशालकाय क्रेन से ही उतना बड़ा वजन उठेगा। यह क्रेन लोक शक्ति का सामूहिक उपयोग संगठित करने से ही बनेगी।

शक्ति का उद्भव किए बिना और कोई मार्ग नहीं। इस संघ शक्ति का सृजन कर सकना पूर्णतया पुरुष के ही हाथ में है। नारियाँ घरों में कैद हैं, उन्हें इतनी सुविधा नहीं कि घर-घर जाकर संगठन का शंख बजा सकें। फिर उनमें उतनी योग्यता एवं कुशलता भी कहाँ रह गई है। अनुभव के अभाव में साधारण कार्य भी ठीक तरह पूरा नहीं हो सकता, फिर नारी संगठन तो बहुत ही कठिन कार्य है। घर के कामों से ही

फुरसत नहीं, फिर संगठन के लिए समय कौन निकालेगी ? जहाँ बिना संरक्षक के घर की देहरी पार करना जुर्म समझा जाता है, वहाँ घर-घर जाकर संगठन का कार्य कैसे हो सकेगा । फिर जिन घरों में वे जायेंगी वहीं आशंका की दृष्टि से देखा जायगा । कोई हमारे घरों की औरतों को बहकाने तो नहीं आया है, यह सोचकर संगठन कर्ताओं की उपेक्षा और अवज्ञा ही होगी नारी स्वयं भी दबी हुई और सभीत है । घर के लोगों की अप्रसन्नता का एक और कारण खड़ा करने का वे कैसे साहस कर सकेंगी ? पहले से ही आये दिन डाँट-डपट के अनेक आधार खड़े रहते हैं, फिर एक और नया कारण उसमें क्यों जोड़ा जाय ? ऐसे अनेक कारण हैं जिनकी वजह से न नारियाँ संगठन के लिए घर घर जा सकती हैं और न जिन घरों में वे जाएँगी वहाँ उन्हें स्वागत-सहयोग मिल सकता है । यदि नारी के जिम्मे नारी संगठन का, नव जागरण अभियान के लिए अभीष्ट क्रिया-प्रक्रिया आरम्भ करने का काम छोड़ दिया गया तो समझना चाहिए कि वह सम्भावना ही समाप्त हो गई ।

नवयुग की सर्वोपरि मांग पूरी करने के लिए प्रत्येक पुरुष को अपने घरों की नारियों को ही महिला जागरण अभियान की संघ शक्ति में सम्मिलित होने के लिए, आगे धकेलना चाहिए । उन्हें उसकी उपयोगिता, आवश्यकता और प्रतिक्रिया से परिचित कराना चाहिए । संगठन के लिए उत्साह पैदा करने से पूर्व उन्हें कठिनाई से ही नव जागरण का सन्देश समझाया जा सकेगा । जिस बात की उन्होंने कभी कल्पना तक नहीं की, जिस सम्बन्ध में कभी सुना-समझा-देखा भी नहीं, उसके लिए एकाएक तत्पर कर लेना बहुत कठिन है । पहली कठिनाई यही है, जिसे हल करके संगठन के लिए दूसरा कदम उठेगा ।

पुरुष पर्दे के पीछे रहें और अपने घरों की स्त्रियों को नव जागरण की भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहन दें, प्रशिक्षित करें और घसीट-पकड़ कर मोर्चे पर खड़ा कर दें । उनके लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करें और सुविधा जुटाएँ, तभी यह आशा की जा सकेगी कि

अभीष्ट संघ शक्ति का उद्भव हो सकेगा । संघ शक्ति के सहारे ही यह संभव है कि सुविस्तृत क्षेत्र में फैली हुई सघन निशा जैसी अवांछनीयता को कम समय में निरस्त किया जा सकेगा । व्यक्तिगत, एकाकी और पृथक-पृथक प्रयत्न चलते रहेंगे तो उनका परिणाम नगण्य होगा । इतने बड़े कार्य के लिए जनशक्ति का साधन जुटाये बिना और कोई उपाय हो नही नहीं सकता, इसलिए इस दिशा में कारगर कदम उठाए जाने में तनिक भी विलम्ब नहीं किया जाना चाहिए ।

पतिव्रत के साथ-साथ पत्नीव्रत धर्म भी

नारी को क्या करना चाहिए, कैसे रहना चाहिए, किन के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए और किस तरह सोचना चाहिए ? इस संदर्भ में धर्म शास्त्रियों और समाज सेवियों द्वारा निरन्तर एक से एक बड़े-चढ़े उपदेश दिए जाते रहे हैं । पतिव्रत धर्म की अथक महत्ता बताई गई है । साथी का उच्चस्तरीय सहयोग करने की प्रवृत्ति को जगाया जाना श्रेयस्कर ही है । बात विचारणीय इतनी भर है कि क्या उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न किए बिना, आवश्यक सामर्थ्य उत्पन्न किए बिना, इतना गुरुत्तर भार वहन करना मनुष्य जैसे दुर्बल प्राणी के लिए सम्भव हो सकता है या नहीं ? ताली दोनों हाथों से बजती है, आदर्शों का निर्वाह दोनों ही ओर से होता है ।

पति और पत्नी को मित्रता के समस्त आदर्शों का पालन करना चाहिए । जिस पक्ष से भूल होती हो उसे तत्काल सुधारना चाहिए । आज की स्थिति में पत्नी जिस योग्य रह गई है उसके अनुरूप वह भोजन बनाने, चौकीदारी करने और काम तृप्ति का उपकरण बने रहने के तीनों ही उत्तरादायित्व मरते-खपते अधिक से अधिक सीमा तक पूरे कर रही है । उसकी वफादारी में कमी होने के प्रसंग भी कभी अपवाद रूप में ही देखे सुने जाते हैं । साथी के प्रति कर्तव्य निष्ठा की न्यायनिष्ठ जाँच में ९९ प्रतिशत पुरुष ही दोषी पाए जायेंगे ।

पत्नी व्रत की सबसे पहली और सबसे मार्मिक पुकार यह है कि

पत्नी के मानवोचित अधिकार उसे वापस लौटा दिए जायँ । उसे सच्चा मित्र समझा जाय । अपनी ही समान स्थिति तक शारीरिक और मानसिक दृष्टि से ऊँचा उठा लेने का प्रबल प्रयत्न किया जाय ।

उन सभी उपायों पर विचार किया जाना चाहिए जिनसे नारी का खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त हो सके । इसके लिए उन्हें पर्दे के कैदखाने से छुटकारा देना सबसे अधिक आवश्यक है । शील सदाचार के लिए आँखों में लज्जा होना पर्याप्त है । घूँघट की किसी भी दृष्टि से कोई उपयोगिता नहीं ।

इससे तो घरेलू बात-व्यवहार में पूछने-बताने की सामान्य प्रक्रिया में भारी बाधा पड़ती है । इस पर्दे से हानि ही हानि है, अनौचित्य ही अनौचित्य है, फिर उसे क्यों पकड़े-जकड़े रहा जाय ?

नारी के बिगड़े हुए स्वास्थ्य की ओर प्रत्येक ईमानदार पति को तत्काल ध्यान देना चाहिए । उसके आहार-विहार में, विश्राम दिनचर्या में ऐसे हेर-फेर करने चाहिए जिससे अवांछनीय दबावों में पिसने से उसे राहत मिल सके । काम क्रीड़ा मादक हो सकती है पर उसका अमर्यादित होना साथी को चौपट करके रख देने के बराबर है, विशेषतया तब जब वह दुर्बलता और रुग्णता से जल रही हो ।

नारी को बहुत समय से पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी जाती रही है । उसने यथासम्भव पूरी ईमानदारी से उसका पालन भी किया है । अब समय आ गया है कि पुरुष भी पत्नीव्रत धर्म का पालन करें और उस पुण्य परम्परा को सफल, सार्थक एवं उभय पक्षीय बनाने में समुचित योगदान करें । पत्नी को यदि स्वजन और सुहृद माना गया है तो उसके साथ मूर्खों और दुष्टों जैसा क्रूर खिलवाड़ नहीं ही करना चाहिए । इन दबावों के कुचक्र में पिसने से बचाना, उसे राहत की सांस लेने देना वह प्रथम कार्य है जिसका आज के प्रत्येक ईमानदार पति को पत्नीव्रत के आरंभिक कर्तव्य के रूप में पालन करना ही चाहिए ।

हम अपने घरों से इसका शुभारंभ करें । अपना दृष्टिकोण और व्यवहार बदलें । नारी को भी नर के स्तर का एक पूर्ण मनुष्य मानें,

व्यवहार, अधिकार तथा सम्मान की दृष्टि से जो भूलें अब तक बन पड़ी हों, उनका सुधार तो किया ही जाय, उनकी क्षति पूर्ति भी की जाय। आज इस प्रकार के परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है।

पति होने का अहंकार त्यागिए

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष में शरीर संरचना को छोड़कर उनमें कोई भेद नहीं रखा है। शरीर संरचना में भी भेद इसलिए है कि दोनों के सहयोग से सृष्टि क्रम चलता रहे। संरचना संबंधी इस अन्तर को छोड़ दें। दोनों के जीवन, श्वांस, हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि, आँखें, माँस, मज्जा और रक्त अस्थियाँ एक जैसे तत्वों से ही बनी हैं। प्रकृति प्रयोजन के लिए और आत्मिक आदान प्रदान के लिए दोनों का साथ रहना आवश्यक है और यह आवश्यकता पति-पत्नी के संबंधों के रूप में पूर्ण होती है, जो क्रमशः मन, मस्तिष्क, हृदय, अन्तःकरण तथा प्राणों की एकता के साथ सघन होते जाते हैं। कहना नहीं होगा कि प्रेम और आत्मीयता का पाठ पढ़ना मनुष्य रिवार से ही आरंभ करता है और परिवार उसके लिए इतना आवश्यक है कि उसके बिना किसी व्यक्ति का जीना तक दूभर हो जाता है।

परिवार बसाने और पति पत्नी चुनने की सुविधा प्रकृति ने मनुष्य को ही दी है। इसे एक सामाजिक समझौता भी कहा जा सकता है और आत्मिक विकास का एक उपक्रम भी। कहने को कुछ भी कह लिया जाय पर इस क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, एक दूसरे का कार्य तथा दायित्व बाँटने एवं उन्हें तत्परता पूर्वक निभाने के लिए ही यह परंपरा चली। एक बाहर का क्षेत्र सम्हालता है तो दूसरा घर की आंतरिक व्यवस्था देखता है। यहाँ तक बात समझ में आती है और उचित भी है। सुविधा की दृष्टि से दोनों एक-एक क्षेत्र सम्हालें। परन्तु इसका क्या औचित्य है कि इन्हीं में से किसी आधार को लेकर कोई पक्ष अपने को बड़ा समझने लगे तथा दूसरे का शोषण करे ? किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कोई अपने साथी के उत्तरदायित्वों को स्वयं निभाने में

आनाकानी करे, संकोच करे और हेठी समझे, यह विकृति नहीं तो और क्या है ?

स्त्री के जिम्मे घर के काम रहते हैं । रसोई बनाने, सफाई करने, बच्चों की देखभाल करने जैसे कार्य ग्रहस्थी कार्य क्षेत्र में आते हैं । पुरुष ने अपने लिए बाहर से कमाना, नौकरी धन्धा करना, खेती बाड़ी सम्हालने जैसे काम ले रखे हैं । परन्तु यह विडम्बना पुरुषों के मामले में ही अधिकतर देखने को मिलती है कि आवश्यकता पड़ने पर घर के अन्दरूनी कामों की देखभाल करने में अपनी हेठी समझने लगते हैं । महिलाएँ तो आये वक्त पर पुरुष के क्षेत्र में भी काम कर लेती हैं, निर्वाह के साधन जुटाने में भी लगती देखी जा सकती हैं परन्तु पति बीमारी की अवस्था में भी पत्नी से ही अपेक्षा करता है कि वह उसे खाना बनाकर खिलाए और बच्चों को सम्हाले ।

जिस आधार पर सहचरत्व धर्म का पालन करने के लिए दाम्पत्य जीवन आरंभ किया गया था, यह रीति नीति उस आधार पर ही कुठाराघात करती है । विवाह के समय वर वधू दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि हम एक-दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहेंगे, एक-दूसरे का सहयोग करेंगे ओर प्रगति के पथ पर साथ-साथ अग्रसर होंगे । पर आगे चलकर यह प्रतिज्ञा उस समय अधूरी और लूली-लंगड़ी रह जाती है जब पुरुष पत्नी का काम सम्हालने में छोटापन अनुभव करता है और उसी प्रकार उसे पुरुष के क्षेत्र में प्रवेश करने से भी रोकता है ।

सुविधा की दृष्टि से कार्य क्षेत्र के विभाजन को अपने दायित्वों और कर्तव्यों की अंतिम सीमा रेखा मान लेना किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं कहा जा सकता । सचाई तो यह है कि पति और पत्नी दोनों मिलकर ही एक संपूर्ण इकाई-समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं । दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं और दोनों एक-दूसरे के सहयोग से ही आगे बढ़ सकते हैं । सुविधा की दृष्टि से कामों का विभाजन कर लेना और बात है परन्तु ऐसी कोई कठोर मर्यादा नहीं बनाई जा सकती कि अमुक कार्य केवल पति ही करे और अमुक कार्य के लिए पत्नी पर ही निर्भर रहा

जाए । औचित्य का तकाजा यह है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर दोनों एक-दूसरे के सहयोगी और पूरक बनने का सिद्धान्त चरितार्थ करें और वफादार तथा कर्तव्यनिष्ठ साथी की तरह एक-दूसरे के कामों में मदद करें, चाहे वे कार्य घर के हों या बाहर के हों ।

देखा गया है कि स्त्रियाँ तो फिर भी अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटतीं । अपने को घर का मुखिया-स्वामी समझने के अहंकार से पुरुष ही दूसरे कामों में हाथ लगाना अपनी अवमानना समझता है । जैसे पत्नी को परिवार से सभी सदस्यों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता है, लेकिन कभी वह बीमार पड़ जाती है तो पति खुद भोजन बनाने की अपेक्षा पत्नी से ही यह आशा करता है कि वह बीमारी की हालत में भी खाना बना कर दे या वह होटल में खाने की बात सोचेगा अथवा घर में बच्चे हों तो उनके हाथ से भोजन बनवाने का विचार करेगा ।

पत्नी के होते हुए पति महाशय को अपने हाथ से खाना बनाने में संकोच लगता है । उसे चूल्हा फूँकने में शर्म आती है । सहज भाव से पत्नी ने किसी कारण वश पति को भोजन बनाने के लिए कह भी दिया तो पति महाराज इस तरह तुनक उठेंगे, जैसे उन्हें कोई बहुत ही गन्दा और नीच काम करने के लिए कह दिया हो । इस मनोभूमि का कारण केवल पति होने का अहंकार ही है, इसके सिवा कुछ नहीं । अन्यथा पत्नी को अपना साथी-सहचर मानने वाले ऐसे अवसरों पर कभी भी संकोच नहीं करते । प्राचीन काल में तो यह व्यवस्था भी थी कि लड़कियों की भांति ही लड़के भी पाक विद्या और गृहकला सीखते थे । गुरुकुलों के आचार्य अपनी पत्नी के साथ ही गुरुकुल के सभी बच्चों की देखभाल करते और भोजन बनाने से लेकर आश्रम की सफाई करने तक किसी भी काम में संकोच नहीं करते थे । राजा नल पाक विद्या में निपुण थे और उनकी इसी विशेषता के कारण दमयंती ने उन्हें ऋतु पर्वा के यहाँ छद्म वेश में भी पहचान लिया था, जब वे सारथी के रूप में काम कर रहे थे । गदाधारी, महाबलशाली भीम अज्ञातवास के समय भी राजा विराट के यहाँ रसोइए के काम पर नियुक्त थे । फिर सामान्य पढ़े-लिखे या

सुशिक्षित-सुसंस्कृत लोग ही क्यों संकोच करते हैं ? स्पष्ट ही इसका कारण पति होने का अहंकार है ।

इस अहंकार के कारण पुरुष घर की आन्तरिक व्यवस्था में से शायद ही किन्हीं कार्यों में रुचि लेता हो । भोजन बनाने की बात तो दूर रही, बच्चों को सम्हालने, बीमार की सेवा सुश्रूषा करने तक के लिए पत्नी को ही नियुक्त किया जाता है । लेकिन जरूरत पड़ने पर पति उसके गीले कपड़े निचोड़ने या उसके वस्त्र उठाकर रखने में भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं । सेवा का क्या यही मूल्य चुकाया जाना चाहिए ? कहाँ तो पत्नी को गृहलक्ष्मी, अर्द्धांगिनी और सहधर्मिणी घोषित करते-करते नहीं अघाया जाता और कहाँ उसका छोटा सा काम करने में भी संकोच या झिझक होती है ।

कई बार तो यहाँ तक देखा जाता है कि स्त्रियाँ दिन रात काम में लगी रहती हैं । उन्हें जरा भी अवकाश नहीं मिलता । दूसरी ओर पुरुष व्यर्थ आलस्य में पड़े रहने, मौज करने और ताश-शतरंज खेलने में ही दिन गुजार देते हैं जबकि आवश्यक यह है कि यदि अपने पास संमय हो तो उसे पत्नी के सहयोग में लगाया जाय, ताकि उसका कार्य जल्दी पूरा हो और थकान, तनाव से जितना संभव हो सके उसे बचाया जा सके । लेकिन लोग काम-काज में सहयोग करना तो दूर रहा, पत्नी के प्रति सहानुभूति तक नहीं रखते, उल्टे अपने काम-काज, कार्यक्रमों से उसे परेशानी में डालते रहते हैं ।

पति के इस अहंकार ने भारत में पत्नी को इतना क्षुद्र बना दिया गया है कि पतिव्रत के नाम पर वह बेचारी पति की बिना खरीदी गुलाम और बन्धुआ मजदूर बनकर ही रह जाती है । इस स्थिति को बदला जाना चाहिए और पुरुष को अपने पति होने का अहंकार छोड़कर पत्नी के साथ सच्चे सहयोगी, मित्र का व्यवहार अपनाना चाहिए ।

पुरुष प्रायश्चित के लिए आगे आयें !

पढ़ी-लिखी कन्याएं अच्छी गृहणी सिद्ध होती हैं और वे अपनी योग्यता से परिवार को सुघड़ तथा सुसंस्कृत बनाने में सफल रहती हैं । पढ़े-लिखे और कुलीन युवक अच्छी शिक्षित और सभ्य पत्नी चाहते भी हैं, पर बात वहाँ पर आकर पेचीदा बन जाती है जब पढ़ी-लिखी लड़की के लिए उससे अधिक पढ़ा-लिखा युवक खोजा जाता है और युवक अथवा उसके अभिभावक उच्च शिक्षा का सारा हर्जा-खर्चा दहेज के रूप में प्राप्त करने के लिए दबाव डालते हैं । इस दबाव की आशंका से ही अभिभावक अपनी बच्चियों को ज्यादा पढ़ाते-लिखाते नहीं हैं और पढ़ा-लिखा भी देते हैं तो उसके योग्य वर का मूल्य चुका नहीं पाते । परिणाम यह होता है कि स्त्रियाँ शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ी रह जाती हैं । केवल शिक्षा की दृष्टि से ही स्त्रियाँ पिछड़ी हुई हों ऐसी बात भी नहीं है । स्त्रियाँ सामाजिक और पारिवारिक जीवन में भी काफी पिछड़ी हुई हैं ।

यह एक तथ्य है कि नारी जब तक परिवार और समाज में पुरुष के समान योग्यता और क्षमता से सम्पन्न नहीं बनती, तब तक न परिवारों का सांस्कृतिक स्तर सुधर सकता है और न समाज का उत्कर्ष ही हो सकता है । यह बात कई अवसरों पर बताई और दोहराई जाती है, पर नारी की योग्यता विकसित करने की आवश्यकता उस गम्भीरता से अनुभव नहीं की जाती, जिस गम्भीरता से अनुभव की जानी चाहिए । अक्सर नारी उत्कर्ष की वकालत करने वाले लोग यह कहकर अपने को उत्तरदायित्व से मुक्त मान लेते है कि नारियाँ अपना उत्कर्ष स्वयं करें ।

सैद्धान्तिक रूप से यह बात ठीक है कि व्यक्ति को अपना उत्थान करने के लिए स्वयं सचेष्ट होना चाहिए । पर जब हम नारी उत्कर्ष के सन्दर्भ में इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो कुछ और भी बातें विचारों को प्रभावित करती हैं । नारी की दुर्दशा और पतित अवस्था जिस प्रकार स्वयं उसके लिए प्रगति अवरोधक है, पुरुष की प्रगति में भी कम

अवरोधकारी नहीं है । यह तो सभी जानते हैं कि स्त्री-पुरुष का अन्योन्याश्रित संग है । दोनों की प्रगति और उन्नति एक-दूसरे के सहयोग से ही सम्भव है । इस इकाई का एक घटक यदि अयोग्य या अविकसित रहा तो उसका प्रभाव निश्चित रूप से दूसरे घटक पर भी पड़ता है । जैसे परिवार में सुसंस्कृत वातावरण की आवश्यकता है । यह वातावरण पढ़ी-लिखी और सुशिक्षित पत्नी आसानी से निर्मित कर सकती है । यदि पति-पत्नी अनपढ़ और अशिक्षित हों तथा पति इस तरह के वातावरण में रहता हो, परन्तु वहाँ के वातावरण को परिष्कृत, सुसंस्कृत रखने की आवश्यकता अनुभव की जाय तो इसके लिए भी पति को ही सारा उत्तरदायित्व अनुभव करना तथा निबाहना पड़ेगा ।

महत्व की दृष्टि से देखा जाय तो भी स्त्री का स्थान और दायित्व पुरुष की तुलना में महत्वपूर्ण है । साधन जुटाने भर का एक छोटा-सा काम पुरुष के जिम्मे है, अन्यथा निर्माण और व्यवस्था तो स्त्री के दायित्व वर्ग में ही आते हैं । सृष्टि निर्माण में भी पुरुष की अपेक्षा उसी का योगदान अधिक है । सन्तान को जन्म देने से लेकर उसका पालन-पोषण करने और घर-गृहस्थी चलाने का सारा उत्तदायित्व नारी पर है । पुरुष तो अपने आप में एक उच्छृंखल इकाई मात्र है । अविवाहित और विधुर व्यक्तियों के घरों का स्तर तथा वातावरण देखकर इस तथ्य का अनुभव भली भाँति किया जा सकता है । एकाकी पुरुष का स्त्री रहित परिवार व्यवस्था और सुन्दरता-सुघड़ता की दृष्टि से बिखरा तथा अस्त-व्यस्त ही पाया जायगा । उसके सुव्यवस्थित बनने की शुरूआत तभी होती है, जब कि परिवार में पत्नी का, गृहिणी का पदार्पण होता है ।

परिवार संस्था में स्त्री का इतना महत्वपूर्ण स्थान, इतनी महिमामय भूमिका होते हुए भी उसे दासी-नौकरानी से अधिक स्थान न दिया जाय, यह शोचनीय है । यों यथार्थ की दृष्टि से पुरुष परिवार का प्रधान कहने भर के लिए है । उसका मूल आधार, जीवन-चेतना, अस्तित्व-धात्री शक्ति तो स्त्री ही है । संसदीय-लोकतंत्र में जो स्थान राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का होता है, वही स्थान परिवार व्यवस्था में पति और पत्नी का

रहता है । शासन व्यवस्था का सूत्रधार जिस प्रकार प्रधानमंत्री है, अधिकांश निर्णय वही लेता है, कार्यक्रमों को वही निर्धारित करता है और उन्हें क्रियान्वित करने के उपाय भी वही खोजता है, राष्ट्रपति तो उन्हें स्वीकृति और सहमति भर देता है, इसी प्रकार गृह व्यवस्था की जिम्मेदारी तथा परिवार के सदस्यों की आवश्यकता का ध्यान रखने की जिम्मेदारी पत्नी पर है । पुरुष कमाता भर है । किस काम में कितना खर्च होना है, इस बात का नियोजन और निर्धारण पत्नी ही करती है । कमाना जितना आसान है, उसे समझदारी के साथ खर्च करना उतना ही कठिन है । इस प्रकार व्यावहारिक सूझबूझ की अपेक्षा भी स्त्री से ही अधिक रहती है ।

इसी कारण उन समाजों में, जिन्होंने आधुनिक काल में उल्लेखनीय प्रगति की है, नारी को समुचित महत्व, स्थान और सम्मान दिया गया है, उनके शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक उन्नति की समुचित व्यवस्था रखी गई है । उनकी प्रगति का यही रहस्य है,क्योंकि योग्य, विकसित और सूझबूझ सम्पन्न गृहिणी के घर में रहने पर पुरुष पारिवारिक चिन्ताओं से एक तरह से मुक्त रहकर अपनी बुद्धि तथा क्षमता का भरपूर उपयोग उत्कर्ष के लिए कर सके हैं और स्त्रियाँ भी समाज की उन्नति में अपना हाथ बंटा सकी हैं । इसके विपरीत जिस समाज ने जब भी नारी के महत्व को घटाकर देखा तथा उसे उसकी गरिमामय स्थिति से गिराया, उस समाज का पतन की ओर लुढ़कना आरंभ हो गया ।

उदाहरण देखना है तो हमारे देश से अधिक अच्छा शायद ही कोई उदाहरण हो, जो हमें प्रभावित कर सके । इस संबंध में स्वामी विवेकानन्द ने एक अवसर पर कहा था-"दो बड़े सामजिक अनर्थ भारत की प्रगति में रोड़ा अटका रहे हैं । उनमें से एक है-स्त्री जाति के पैरों में पराधीनता की बेड़ी डाल रखना ।" इस तरह के विचार व्यक्त करने पर स्वामी जी के एक शिष्य ने उनसे कहा था-"स्त्री जाति साक्षात् माया की मूर्ति है । मनुष्य के अध:पतन के लिए ही मानो उसकी सृष्टि हुई है । बौद्ध युग में जब स्त्रियों के लिए मठ खोले जाने लगे तो

उनमें अनेक प्रकार से व्यभिचार फैले । सम्भव है, इसीलिए शास्त्रों ने इंगित किया है कि उनके लिए ज्ञान-मुक्ति का लाभ लेना कठिन है।"

स्वामी विवेकानन्द ने बड़े जोर से फटकारते हुए उक्त शिष्य से कहा था-"समझ में नहीं आता कि इस देश में स्त्री को इतनी नीची निगाह से क्यों देखा जाने लगा जब कि यहाँ के दार्शनिक-ग्रन्थों में तो यह सिद्धान्त बताया जाता है कि एक ही चित्सत्ता सब भूतों में विद्यमान है । तुम लोग स्त्रियों की निन्दा करते हो और इस देश निवासियों ने तरह-तरह के नीति-नियम बनाकर उसे एकदम बच्चा पैदा करने की मशीन बना डाला । जगदम्बा की साक्षात् मूर्ति इन स्त्रियों को इस तरह गिराने के कारण ने ही इस देश का इतना अधःपतन कर डाला । किस शास्त्र में लिखा है कि स्त्रियाँ-ज्ञान और मुक्ति की अधिकारिणी नहीं हो सकतीं ? जिस अन्ध युग में ब्राह्मण-पण्डितों ने ब्राह्मणेतर जातियों को वेदपाठ का अनाधिकारी घोषित किया, उसी काल में स्त्रियों के भी अधिकार छीन लिए गए । अन्यथा वैदिक युग में, उपनिषद् युग में तुम देखो-मैत्रयी, गार्गी आदि प्रातः स्मरणीया स्त्रियां ब्रह्म विचार में ऋषि तुल्य हो गई थीं । सहस्त्र वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने गर्व के साथ याज्ञवल्क्य का ब्रह्मज्ञान के शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया था । इन सब आदर्श विदुषी स्त्रियों को जब उस समय अध्यात्म का अधिकार था, तब फिर आज भी स्त्रियों को वह अधिकार क्यों न रहेगा ?"

स्वामी विवेकानन्द के इन विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में जब चतुर्दिक उन्नति हुई, तब नारियों को कभी गिरी हुई दृष्टि से नहीं देखा जाता रहा । मातृत्व इतना महिमामय है भी, जिसकी छत्रछाया में पलकर लोग विभूतिवान् बनें और देश व समाज के लिए उल्लेखनीय सेवाएँ कर सकें । प्राच्य संस्कृति में सन्तान का अच्छा या बुरा होना माँ की मर्यादा के साथ जुड़ा हुआ था । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, शिवाजी, प्रताप, अशोक, विक्रमादित्य, सुभाष, गांधी और नेहरू सरीखे महान् व्यक्तित्वों को जन्म देने और उनका निर्माण करने का श्रेय माँ को ही रहा है । सामान्य लोगों में भी पिता की अपेक्षा माँ का स्थान ही सर्वोपरि है ।

पिता के संरक्षण और प्यार का उतना प्रभाव सन्तान पर नहीं पड़ता, जितना कि माँ की ममता और लाड़-प्यार का पड़ता है । माँ के आँचल की छाया जिस पुरुष को नहीं मिली, उसने जीवन में आगे चलकर कोई बड़ा कार्य किया हो, ऐसी विभूतियाँ अपवाद स्वरूप ही मिलती हैं । लेकिन व्यक्तित्व के गठन से लेकर समाज, सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में व्यक्ति तब भी सक्षम हुए हैं, जब कि उनके पिता असमय ही छिन गए । कहने का अर्थ यह है कि पिता के अभाव की पूर्ति माँ कर सकती है, पर माँ के अभाव की पूर्ति पिता के द्वारा सम्भव नहीं ।

अत: यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पुरुष जाति का अस्तित्व नारी के कारण ही सुरक्षित है । यही नहीं, विभूतिवान व्यक्तित्वों का निर्माण तथा समाज की उल्लेखनीय सेवा करने वाले महामानवों का सृजन भी माताएँ ही कर सकी हैं, उन्हें दासी और अनुचरी कहकर पुरुष स्वयं को चाहे जो समझ ले, पर इससे उसी को नहीं, सारे राष्ट्र को ही अपार हानि उठानी पड़ती है । राष्ट्र की जननी, पुरुष की सहयोगिनी, सहचरी और अनुवर्तिनी को पैर की जूती समझकर तथा पशुओं से भी बदतर रखकर उसका अपना क्या हित होगा ? जिसका सहारा लेकर, जिसका सहयोग पाकर ऊँचा उठा जा सकता है, उस सहारे को कमजोर बनाकर क्या पाने की आशा की जा सकती है ? यह तो उसी डाली को काटने जैसी मूर्खता है, जिस पर बैठा जा रहा हो ।

स्त्रियों को विकसित करने के लिए, उनकी योग्यताओं और क्षमताओं का उपयोग राष्ट्र हित में करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है कि उनका पिछड़ापन दूर करने के लिए प्रभावशाली पग उठाये जायं । इस दिशा में पहला कदम उनकी अशिक्षा दूर करने का, उन्हें अज्ञानान्धकार से दूर निकालने का हो सकता है । घर की चहार दीवारी में कैद रहने से ही नारी-असभ्य, असंस्कृत, अपंग और अयोग्य बन गई है । उसकी जड़ हो गई चेतना राष्ट्र और समाज के लिए उसकी सारी उपयोगिता को नष्ट करने का कारण बनी है । अज्ञान और दासता के प्रतिबन्धों ने उसे कायर और भीरु बना दिया है । घर में रहते हुए

भी वह कितनी दबी-दबी है, मानो उस पर अभी ही जैसे कोई विपत्ति आने वाली है, जिससे वह अपनी रक्षा नहीं कर पाएगी । कोई विपत्ति न होने पर भी वह इतनी भयभीत-सी है, तो जब वास्तव में विपत्ति आ जायगी, तब उसकी क्या दशा होगी-कुछ कहा नहीं जा सकता । सम्भावित विपत्तियों की कल्पना मात्र से वह रोने-चिल्लाने लगती है, उसमें न उसका सामना करने का साहस होता है-न कोई उपाय खोजने की बुद्धि ।

इन सबका कारण है-पुरुष ! पुरुष ही वह अपराधी है, जिसने नारी को इस दशा में पहुँचाया है और अपने अपराध का प्रायश्चित करने के लिए उसे उत्साहपूर्वक आगे आना चाहिए । इसका ठीक यही समय है, जिसमें कि हम लोग रह रहे हैं ।

क्या बड़प्पन के लिए पुरुष ही एकाधिकृत है

परिवार में घर गृहस्थी की आवश्यकताएँ पूरी करने और निर्वाहोपयोगी उपार्जन करने का कार्य पुरुष को सम्हालना पड़ता है । इस कारण उसका व्यक्तित्व और कार्य क्षेत्र घर परिवार के साथ-साथ बाहर भी बँट जाता है । सम्भवतः यही एक मात्र कारण है कि पुरुष को परिवार में प्रमुख और मुखिया की प्रतिष्ठा मिली हो । लेकिन परिवार के सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि उसका प्रमुख अंग मुखिया ही नहीं है-एक गृहिणी भी है, जो परिवार की आन्तरिक व्यवस्था को सम्हालती है, घर के सभी सदस्यों की आवश्यकताएँ देखती-भालती है । उसे भी समुचित प्रतिष्ठा और महत्व दिया जाना चाहिए ताकि गृहस्थ रूपी गाड़ी के दोनों पहिए एक धुरी पर समानान्तर रूप से टिके और चलते रहें । लेकिन ऐसा होता नहीं है । पिछली शताब्दियों में भारतीय परिवारों का ढाँचा कुछ इस प्रकार का बन गया है कि उसमें स्त्री को गौण और पुरुष को प्रधान माना जाने लगा ।

स्त्री-पुरुष की असमान प्रतिष्ठा के कारण गृहस्थी की गाड़ी किसी प्रकार चलती भले ही रहे पर वह चलती कम, घिसटती ही अधिक है ।

प्रसिद्ध अंग्रेज लेखिका मार्गरेट ब्लेयर जान्सन का यह मत ? ऐसी परिस्थितियों में स्त्रियों को अपना दायित्व भली-भाँति निभाने में अक्षम होने लगने का कारण व्यक्त करता है "पुरुष का प्यार उसके जीवन का एक हिस्सा है पर वह स्त्री का पूरा जीवन ही है ।"

पुरुष का कार्यक्षेत्र घर की चहारदीवारी से बाहर ही अधिक रहता है, पर स्त्री के लिए जीवन और परिवार इस प्रकार एकाकार हो जाते हैं कि उसके लिए परिवार से पृथक् कुछ रह ही नहीं जाता । परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं से लेकर उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखने और बच्चों को जन्म देने की उनका पालन-पोषण करने की समस्त जिम्मेदारियाँ स्त्री पर ही अधिक रहती हैं । भारतीय मनीषियों ने इस तथ्य को भली-भाँति जाना है । इसीलिए स्त्री शब्द का पर्याय गृहिणी है पर पुरुष के लिए वैसा कोई शब्द नहीं है । स्पष्ट है कि भारतीय महिलाओं का जीवन ही परिवार के निर्माण और विकास का महत्वपूर्ण दायित्व निभाने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर सँवारा जाता था, जबकि पुरुष के लिए अन्य क्षेत्र सौंपे जाते थे । उस समय की स्थिति के अनुकूल भी था यह । पर परिवार में स्त्रियों के दायित्वों की गम्भीरता आज भी उसी प्रकार बनी हुई है । यही कारण कहा जा सकता है कि जहाँ अन्य देशों में परिवार संस्था टूटने से लोगों का सामाजिक जीवन भी अस्त-व्यस्त होता रहा है, वहीं भारतवर्ष में परिवार आज भी अपनी गौरव गरिमा के अनुरूप सुदृढ़ स्थिति में हैं ।

इस स्थिति का श्रेय स्त्रियों को, गृहिणियों को ही दिया जाना चाहिए । पर पुरुष के अहं ने वहाँ भी अपनी मान्यता का सिक्का स्त्री के अस्तित्व पर ही लगा दिया जबकि वह परिवार की एक ही आवश्यकता पूरी करता है और परम्परागत रूप से स्त्रियों पर एक ही दायित्व नहीं डाला गया है । हालांकि आज के समय में तो कई पढ़ी-लिखी महिलायें और मजदूर स्त्रियाँ भी परिवार की आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करने में सक्रिय सहयोग देती हैं, लेकिन फिर भी पुरुष प्रधान समाज में अपने अहं को ही प्रमुखता देकर पुरुष ने सारा सम्मान, सारी प्रतिष्ठा स्वयं ही

हथिया ली और नारी के लिए छोड़ दिया दासी का-सेविका का स्थान, जिसके बदले में उसे कोई अधिकार देने के स्थान पर उसके मन में यह बात बिठा दी गई कि पुरुष के बिना उसका जीवन तिल भर भी आगे नहीं बढ़ सकता और उसे पुरुष के इस उपकार के लिए कृतज्ञ होना चाहिए।

बड़प्पन पर, प्रतिष्ठा पर अपना अधिकार जमाए रहने की बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय परिवारों में पुरुष ने स्वयं को अन्तिम सत्ता और सर्वोत्तम मान्यता के आधार पर अब भी प्रतिष्ठित कर रखा है। बाल्यकाल से ही भेदभाव का ही नहीं, दुराव-छलाव का यह कुचक्र चल पड़ता है। घर में एक पुत्र का जन्म होता है तो यह मान कर खुशियाँ मनाई और मिठाई बाँटी जाने लगती हैं कि वंश का नाम चलाने वाला, कुल की शान बढ़ाने वाला एक दीपक जाग उठा है और कन्या जन्म लेती है तो कई लोग छाती पीट लेते हैं कि जन्म भर के लिए एक ऐसी समस्या खड़ी हो गई है जिसके लिए मरने तक चिन्ता करनी पड़ेगी। उसकी योग्यता पढ़ाने-लिखाने और जीवन के लिए आवश्यक विषयों का ज्ञान प्राप्त कराने में नहीं, घरेलू काम काजों में दक्ष बनाने के रूप में आंकी जाती है। कुछ अर्थों में इतना सब होता तो भी कोई खास बात नहीं थी। प्रश्न तो तब और ज्वलंत रूप से उठ खड़ा हो जाता है, जब घरेलू काम काजों का अर्थ केवल खाना बनाने, कपड़े साफ करने और बर्तन माँजने तक ही सीमित कर दिया जाता है।

इस आधार पर भी कन्या और पुत्र के लिए सुविधाएँ देने और मूल्यांकन करने में भेदभाव बरता जाता है कि लड़की तो पराया धन है। उसे पढ़ाने-लिखाने की क्या आवश्यकता और उसे अच्छा खिलाने-पिलाने, पहनाने-ओढ़ाने का भी लाढ़ क्यों किया जाय। आखिर उसे तो पराए घर ही जाना है। जबकि असली बात यह है कि न तो कन्या अन्तिम समय की साथी होती है और न पुत्र ही। आज के समय में, बदलते सन्दर्भों के युग में वृद्ध अभिभावक अपने पुत्रों द्वारा की

गई उपेक्षा-अवहेलना के रूप में इस तथ्य को भली-भाँति देख परख रहा है ।

पराए धन और दूसरे घर की शोभा के रूप में भी उसकी प्रतिष्ठा बन जाती या स्थान सुरक्षित हो जाता तो भी कुछ सन्तोष किया जा सकता था । लड़कियाँ बहू बन कर ससुराल जाती हैं तो उस घर के पुरुष सदस्यों से लेकर महिलाएँ तक अपनी आत्मीयता नहीं बरत पातीं । वे समझती हैं कि रोटी-कपड़े के बदले में एक सस्ती दासी मिल गई है, जो जीवन भर उनकी या उनकी न सही उनके पुत्रों की चाकरी करेगी । परिवार के अन्य लोग तो अस्वाभाविक रूप से बहू के आगमन को लेते ही हैं, स्वयं पति भी उसे स्वाभाविक रूप में कहाँ ग्रहण कर पाता है । वह समझता है कि उसे सेवा के लिए एक चाकर के साथ-साथ अपनी काम वासना की तृप्ति के लिए भी एक खिलौना मिल गया । बाहर से चाहे जो कुछ भी दिखाई देता हो, आन्तरिक और मानसिक स्थिति कुछ और ही होती है । वर्चस् यहाँ भी पुरुष ही अपना बनाए रखते हैं ।

वर्तमान में, जबकि महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन तीव्रता के साथ आवश्यक अनुभव किया जा रहा है, तो सर्व प्रथम पुरुष को ही अपना कुण्ठित अहं से प्रेरित दुराग्रह पूर्ण रवैया बदलना होगा । पति-विवाहित स्त्री का सर्वाधिक निकटतम और अन्तरंग पुरुष साथी है । अतएव उनके संबंधों की सूक्ष्मताओं को भलीभाँति जान लेना चाहिए । उदाहरण के लिए कई पति ऐसे होंगे जो यह मानते हैं कि घर में अवकाश का समय व्यतीत करने की आवश्यकता क्या है और पत्नी को दुःख है भी किस बात का । मैं अच्छे पैसे कमाता हूँ । सुविधाजनक मकान है । बच्चे हैं, इनके अलावा उसे और क्या चाहिए । इन सबके रहते हुए हम छुट्टी का समय कहीं मौज मस्ती में न उड़ा कर बच्चों की चिल्लपों सुनते रहें इसकी क्या आवश्यकता है । "इसका अर्थ है उपलब्ध सुविधा साधन पत्नी के लिए ही हैं और उसे उनमें ही सन्तुष्ट रहना चाहिए क्योंकि उसके लिए काफी हैं ये सब । तो

पत्नी के लिए वह सब तो पर्याप्त है पर चूँकि पति महोदय परिवार में विशिष्ट व्यक्ति हैं इसलिए उनके सन्तोष और आनन्द का केन्द्र, आवश्यकताएँ तथा रुचियाँ भी परिवार के सामान्य सदस्यों और पत्नी से भिन्न होना चाहिए ।"

पुरुष की स्वमान्य विशिष्ट प्रतिष्ठा को सिद्ध करने के लिए उपरोक्त कथन पर्याप्त है । जिसका आशय है पति की रुचि पत्नी से भिन्न होनी ही चाहिए तथा उसे पत्नी की भावनात्मक अपेक्षाओं को समझने की भी आवश्यकता नहीं है । दम्पत्ति की दो शरीर एक प्राण से उपमा दी जाती है । लेकिन अधिकांश दम्पत्तियों के पारस्परिक संबंधों में यह उपमा फलितार्थ नहीं होती । विवाह के कुछ दिनों बाद तक पति पत्नी की हर इच्छा को पूरा करने में उत्साह दर्शाता है, उसे सब प्रकार से सुखी रखना चाहता है । लेकिन एक दो बच्चे होने पर वह सारा उत्साह और सारे प्रयत्न शिथिल हो जाते हैं । इसका कारण सम्बन्धों में कोई नई बात का पैदा हो जाना नहीं है । वस्तुतः तो नववधू के प्रति सारा ध्याम वासनात्मक आकर्षण और कामेच्छा तृप्ति का उत्कोच (रिश्वत) ही है, जो आगे चलकर मन्द पड़ जाने पर उदासीनता धारण कर लेता है । अन्यथा नव वधू से प्रेम और जन्म जन्मान्तरों तक के सम्बन्ध रखने की कसमें खाने वाला पति अपनी पत्नी को शैक्षणिक दृष्टि से योग्य बनाने का कितना प्रयत्न करता है ? उसकी क्षमताओं के विकास में कितनी रुचि लेता है ?

नव दम्पतियों के आकर्षण और प्रारंभिक संबंधों की यह स्थिति है पर पुरुष मूल रूप में यहाँ भी अपने अहं को ही महत्व देता है । नव वधू के स्वास्थ्य, शक्ति और क्षमता के प्रति निश्चिंत रहकर अपनी तुष्टि को ही प्रधानता दी जाती है और घर की बड़ी बुजुर्ग औरतें भी सदा की परम्परा के अनुसार लम्पट और दुराचारी पति को भी देवता मानने की प्रेरणा दिया करती हैं । बाजार में या दोस्तों के साथ पति कितने ही गुलछर्रे उड़ा

रहा हो पर पत्नी को भोजन तभी करना चाहिए जब पति थाली से उठ जाए । भले ही वह दोपहर को बारह बजे खाना खाये या अपराह्न तीन बजे । अपने पहने हुए कपड़े धोने की झंझट भी पुरुष ने पत्नी के गले मढ़ दी, बटन टाँकने, मोजे ठीक करने, कपड़ों पर स्तरी करने और जूतों को साफ रखने की जिम्मेदारी के साथ पति दतौन के समय पानी का लोटा लाने का काम भी पत्नी पर छोड़ दिया करता है । स्त्री के जीवन में पति के घर पर भी क्या सुख और क्या सन्तोष ! पिता के घर पर पराया धन बन कर जीयी तो पति के घर पराई बेटी बनकर रहने की विवशता । हर क्षेत्र में पुरुष ने उसका शोषण करने तथा अपने अहं को तुष्ट करने की धृष्टता की है ।

स्थिति के रूप में स्त्री यदि परिवार में दूसरे दर्जे का सदस्य बन कर रहती है तो अधिकार के क्षेत्र में भी उसकी यही बात है । परिवार में पुरुष सदस्य अपने या अन्य सदस्यों के लिए स्वतंत्र निर्णय ले सकते हैं । परन्तु वह अधिकार स्त्री को नहीं है । चाहे जब उसकी आवाज को दबाया जा सकता है, उसकी आकांक्षा को कुचला जा सकता है, उसकी आवश्यकताओं की उपेक्षा की जा सकती है । पुरुष समाज की एक स्वतंत्र इकाई हो सकता है तो स्त्री के संबंध में यही बात स्वीकार करने के लिए क्या अड़चन होनी चाहिए । उसे जिम्मेदार तो ठहराया जाता है पर अधिकार सम्पन्न नहीं माना जाता । विवाह के बाद स्वनिर्भर पुत्र अपनी पत्नी को लेकर अलग हो जाता है तो भी अपने बेटे को दूध का धुला और बहू को सारे अनर्थों की खान निःसंकोच घोषित कर दिया जाता है, जबकि बहू बेचारी अपने मन का खाना बनाने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है । इसके लिए भी पति से पूछना पड़ेगा और अलग होने का निर्णय अकेले बहू का ही तो नहीं होता, पुत्र भी समान रूप से सहमत हो तभी यह बात बनती है । अक्सर तो बहू विघटन के मामलों में तटस्थ ही रहती है । उन्मुक्त जीवन में पुत्र ही अड़चन अनुभव करते

हैं तभी अलग होने की बात सोचते हैं और सारा दोष बहू के मत्थे आ जाता है ।

पत्नी को इतना भी तो अधिकार नहीं है कि वह माँ बनने के लिए पहले से सहमत हो सके । प्राय: ही अधिक सन्तानें पत्नियों के प्रति किए गये अत्याचार से जन्म लेती हैं, जबकि प्रसव वेदना सहने से लेकर उसे पालने पोसने तक का काम उसी के सिर पर आता है । परिवार से संबंधित प्रत्येक विषय में पत्नी को-स्त्री को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है, जबकि महत्वपूर्ण भूमिका उसी की होती है, उसे सारे काम भले ही अनमनेपन से करने पड़ते हों, यही कारण है परिवारों की शांति नष्ट होने और सुव्यवस्था बिगड़ने का । पुरुषों को इस सम्बन्ध में समझदारी से काम लेना चाहिए तथा पत्नी का भी अपने समान स्तर का उत्तरदायी सदस्य मान कर उसे समुचित प्रतिष्ठा देनी चाहिए । उसकी योग्यता का लाभ परिवार के बसाने में ही नहीं, उसका निर्माण करने में भी उठाना चाहिए, क्योंकि समाज का विकास स्त्री-पुरुषों की शोषित और शोषक सम्बन्धों पर नहीं, मित्र और साथी के सम्बन्धों पर ही निर्भर है ।

पतिव्रत का कर्तव्य-मर्यादा क्या पत्नी के लिए ही ?

शरतचन्द्र के एक उपन्यास की नायिका नायक से यह प्रश्न करती है-"जितने भी कर्तव्य हैं, दाम्पत्य की जितनी भी मर्यादाएँ हैं, वे क्या केवल स्त्रियों के लिए ही हैं । पुरुष जिस स्त्री को वैदिक मंत्रों से ब्याह कर लाता है उस स्त्री के प्रति क्या उसका यही कर्तव्य रह जाता है कि वह बेंत के जोर से उसके अधिकार छीन सकता है और क्या कर्तव्य की सारी जिम्मेदारी पत्नी पर ही बनी रहती है ।" यह प्रश्न न केवल नायक से किया गया है वरन् नायक के माध्यम से पूरे पुरुष समाज से किया

गया है । आमतौर पर हम देखते हैं कि पारिवारिक जीवन में पुरुष ने अपने लिए असीमित अधिकार सुरक्षित कर रखे हैं पर पत्नियों के जिम्मे सेवा, बच्चों का लालन-पालन, चौका-चूल्हा से लेकर निष्ठा-वफादारी और कर्तव्य परायणता की अपेक्षाएँ जुड़ी ही रहती हैं, जबकि अधिकारों के नाम पर उसके पास नाम मात्र को भी कोई निर्णय लेने की छूट नहीं रहती ।

तो अनायास ही यह प्रश्न उठता है कि क्या सभी कर्तव्य स्त्रियों के लिए हैं और अधिकारों के उपयोग की क्षमता केवल पुरुषों के पास ही है । 'भारतीय पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में किसी विचारक ने कहा है-प्रत्येक भारतीय पुरुष अपने लिए सीता, सावित्री के समान पत्नी चाहता है पर खेद है कि राम और सत्यवान कोई भी बनने को तैयार नहीं ।'

सीता-सावित्री की अपेक्षा नारी के सतीत्व को लेकर ही की जाती है । जैसे एक मात्र यही दाम्पत्य जीवन की पात्रता हो । पारिवारिक जीवन में शील, सतीत्व का महत्व तो है पर उसके लिए अन्य बातों की उपेक्षा कर देना, यहाँ तक कि पुरुष द्वारा अपनी शीलता-शुचिता को महत्वहीन मानना पारिवारिक संस्था के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ है । होना तो यह चाहिए कि पति-पत्नी दोनों ही शीलवान और पत्नीव्रती तथा पतिव्रती हों, पर स्त्री पर ही इसका सारा कर्तव्य छोड़ देने से पुरुष अपनी ओर कम ध्यान देने लगा । नारी की परतंत्रता का यहीं से आरम्भ हुआ । पत्नी और साथी से हटकर वह दासी तथा सेविका यहीं से समझी जाने लगी जबकि उसके निष्ठा का अपना कर्तव्य भी पुरुष ने छोड़ दिया ।

अपने कर्तव्यों और स्त्री के अन्य गुणों की ओर से ध्यान कम कर या हटाकर उसकी निष्ठा पर ही सारा जोर दे डालने का अर्थ तो यह है कि परिवार का निर्माण केवल सन्तानोत्पादन के लिए ही किया

जाता है । आजकल के अर्थों में लें तो विवाह का उद्देश्य केवल काम सेवन ही है । कहने का अर्थ यह नहीं है कि सन्तानोत्पादन का विवाह से-दाम्पत्य जीवन से कोई सम्बन्ध ही नहीं है । सन्तानोत्पादन परिवार बसाने का एक उद्देश्य तो है पर सम्पूर्ण उद्देश्य वही नहीं है । बल्कि सम्पूर्ण उद्देश्य तो इतना ऊँचा है कि उसके सामने सन्तानोत्पादन एक छोटा-सा ही अर्थ प्राप्त कर सकता है ।

विवाह का सम्पूर्ण उद्देश्य सेवा, प्रेम, त्याग और सहिष्णुता का सम्बन्ध है । माता-पिता से पुत्र के प्रगाढ़ सम्बन्ध होते हैं, उसके बाद पुरुष का सर्वाधिक प्रगाढ़ सम्बन्ध अपनी पत्नी से ही होता है । स्त्री के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त लागू होता है । एक अर्थ में तो पति-पत्नी के सम्बन्ध माता पिता के सम्बन्धों से भी अधिक प्रगाढ़ और आत्मिक होते हैं क्योंकि बचपन और किशोरावस्था में पढ़ा लिखा देने के बाद अभिभावकों के संरक्षण की कोई आवश्यकता नहीं रहती । आजकल माता-पिता से अधिकांश संबंध यहीं आकर निवृत्त हो जाते हैं । इसके लिए केवल सन्तान को ही दोषी ठहराना अनुचित होगा । परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनती जा रही हैं कि युवक आत्म निर्भर होने के बाद संरक्षण की कम, साथी और मित्र की आवश्यकता अधिक अनुभव करते हैं । जबकि माता-पिता जो कभी संरक्षक रहे हैं अपनी सन्तानों से मित्रवत व्यवहार करना अपनी प्रतिष्ठा का अपमान समझते हैं । भारतीय संस्कृति ने तो इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए पहले से ही कह रखा है कि १६ वर्ष की आयु के बाद पुत्र को एक मित्र की दृष्टि से देखना चाहिए ।

पति-पत्नी के प्रगाढ़ आत्मीय सम्बन्धों का एक कारण यह है कि वे जितने निकट, जितने खुले हुए और परस्पर त्याग से अपना जीवन प्रारम्भ करते हैं उतना शायद ही अन्य सम्बन्धों में होता है । पत्नी अपना परिवार, माता-पिता, भाई-बहन और सहेलियाँ छोड़ कर पति के पास आती है तथा सर्वस्व सौंप देती है । अब प्रतिदान स्वरूप पुरुष को भी

आत्म समर्पण करना चाहिए । परन्तु प्रतिदान के स्थान पर पुरुष आक्रमण कर बैठता है और पत्नी को भी अपनी सम्पत्ति बना लेता है ।

पत्नी को सम्पत्ति समझने की बात पिछड़ेपन और असभ्य युग की द्योतक है । पर आज का आधुनिक और प्रगतिशील समाज इसी छलना को जी रहा है । पहली छलना तो यही है कि हम विवाह का अर्थ केवल काम सेवन ही समझते हैं ।

काम वासना के नियंत्रण मात्र का उद्देश्य लेकर विबाह करना- एकांगी ही नहीं उपहासास्पद भी है । इसी उपहासास्पद प्रक्रिया को सदियों से अपनाया जाता रहा है और विवाह के महान उद्देश्यों की ओर से आँखें मूँदी जा रही हैं । कहा जा चुका है कि इसी कारण स्त्री को दासी बनाने का रिवाज चला । स्त्री से ही पतिव्रत धर्म की अपेक्षा करना और पुरुष के इस निष्ठा से बचे रहने का कारण कोई वर्णसंकरता उत्पन्न न होने देने तथा प्रगाढ़ प्रेम सम्बन्ध बनाये रखने की सतर्कता नहीं है । वहाँ तो केवल 'यही' भावना रहती है कि पत्नी मेरी दासी है, अतः उस पर केवल मेरा अधिकार है । वह मेरी सम्पत्ति है किसी और के उपभोग में क्यों आए ?

प्रश्न उठता है कि पतिव्रत धर्म को क्या निरस्त कर दिया जाय ? ऐसा करना तो भूल को सुधारने के लिए दूसरी और बड़ी भूल करने जैसा है । पतिव्रत धर्म न तो अनावश्यक है और न अवांछनीय । अनावश्यक और अवांछनीय तो यह है कि पुरुष इस कर्तव्य से पलायन करता है । यदि समाज में स्वस्थ वातावरण बनाए रखने के लिए ही यह मर्यादा रखी गई है तो स्त्री से भी अधिक पुरुषों के लिए यह अनिवार्य की जानी चाहिए । क्योंकि स्त्रियाँ कोई बलात्कार नहीं करतीं, किसी को पथभ्रष्ट नहीं करतीं, किसी पुरुष को यौन मर्यादाओं का उल्लंघन करने के लिए प्रेरित नहीं करतीं । यह बात विज्ञान सिद्ध है कि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा कामुकता नहीं के बराबर रहती है । जो कुछ रहती है वह भी

प्रकृति की प्रेरणावश और वह भी एक बच्चे के हो जाने के बाद समाप्त हो जाती है । अपवाद स्वरूप कोई स्त्री इसके लिए बदनाम भी है तो स्मरणीय है कि उसे पथभ्रष्ट करने में पुरुष ही कारण रहा है ।

पुरुष अपनी पत्नी पर तो कामुक अत्याचार करता ही है, घर से बाहर भी गन्दगी का वातावरण बनाता है । कामुकता, लम्पटता, व्यभिचार, शीलहरण, बलात्कार के जितने भी सामाजिक और कानूनी अपराध हैं उनकी गिरफ्त में पुरुष ही आता है । स्त्री से एक बार पतिव्रत धर्म पालन की अपेक्षा न भी की जाय और केवल पुरुष ही पत्नी व्रती रहना आवश्यक समझ लें तथा रहने लगें तो कोई कारण नहीं है कि समाज में गन्दगी फैले ।

यौन जीवन में एक निष्ठा के मामले में पुरुष ने स्वयं को कर्तव्य पालन से तो छूट दे ही रखी है, गार्हस्थ जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी वह अपनी चालाकी से बच निकलने के लिए कम नहीं है । बच्चों को सम्भालने, खाना बनाने, घर के बीमार सदस्यों की देखरेख करने आदि के सभी दायित्व स्त्री पर ही तो हैं । पुरुष इन कार्यों को करना अहमक प्रश्न समझता है । परस्पर आत्म समर्पण के आधार पर आरम्भ किए दाम्पत्य जीवन का आनन्द उठाया जा सकता है अर्थात् स्त्री पतिव्रता रहे पर पुरुष को भी पत्नी व्रती बनना ही होगा ।

पति ही नहीं, पति के कर्तव्य भी हैं

'अपने प्रति हम जैसा व्यवहार चाहते हैं वैसा व्यवहार दूसरों के साथ करें'-सिद्धांत प्रायः बहुत कम पालन किया जाता है । अन्यों के साथ की बात तो दूर रही अपनों के साथ भी इसे व्यवहृत नहीं किया जाता । पुरुष का निकटतम संबंधी उसकी स्वयं की पत्नी होती है । वह उसके जीवन की साथी होती है । आत्मीय भावों को जानने, समझने तथा उसके सुख-दुख में हाथ बँटाने वाली होती है । किन्तु पुरुषत्व का अखण्ड स्वामित्व अपनी पत्नी पर जमाए रखकर पुरुष उसे अपनी दासी

एवं सेविका समझते हैं । वो हमेशा ही उससे काम कराते रहते हैं । थोड़े-थोड़े एवं छोटे-छोटे कामों के लिए उस पर आश्रित रहते हैं । इन कार्यों में उससे थोड़ी सी भी भूल हो जाती है तो उसे लेकर लांछित किया जाता है । उसका तिरस्कार किया जाता है । बात-बात में पत्नी को अपमानित होना पड़ता है ।

नारी को सहनशीलता, त्याग, ममता, सहृदयता का देवी कहकर पुरुष अपने आतंक को बनाए रखने में ही अपना स्वाभिमान समझते हैं । वे पत्नी से यह अपेक्षा रखते हैं कि वह अपने स्वयं के अस्तित्व को भूलकर केवल हमारी पूजा करती रहे, चाहे इसके लिए उसे कितने ही कष्टों एवं दुखों को क्यों न सहन करना पड़े । हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ पुरुष भी रोगी-कमजोर पत्नी से अपनी सेवा कराने से लेकर गृहस्थी के सारे कामों को कराते रहने की इच्छा रखते हैं । ऐसा करते भी हैं । अन्य कामों की बात अलग है, वे स्वयं अपने हाथ से पानी लेने में भी अपने पुरुषत्व की हानि समझते हैं ।

जहाँ पुरुष की इतनी अधिक अपेक्षाएँ रहती है वहाँ नारी की भी कुछ न कुछ अपनी इच्छा होगी ही । वे भी अपनी इच्छाओं के अनुरूप पति चाहती होंगी । इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती । वे भी चाहती हैं कि उनका पति सच्चा जीवन साथी, कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाला, जीवन यात्रा में दाम्पत्य रथ को बढ़ाते हुए स्वर्गीय सुखों की वृद्धि करने वाला मिले । ऐसे सच्चे सहचर को पाकर वे स्वयं का गौरवान्वित अनुभव करती हैं तथा ऐसे पति की पत्नी बनने का गर्व भी । कहीं ऐसा तो नहीं कि केवल पति ही अच्छी पत्नी चाहे और पत्नी अच्छा पति न चाहे ।

व्यवहार जगत में ऐसा ही हो रहा है कि पति की सारी इच्छाएं पूर्ण होनी चाहिए । इसमें अनुकूल न हो पाने पर पत्नी को तंग किया जाना, मारना-पीटना, तिरस्कार किया जाना होता ही है, तलाक आदि तक की सजाएं भी दी जाती हैं । इसका दूसरा पक्ष यह है कि पत्नी की इच्छाओं

की कोई कीमत नहीं मानी जाती । वह खरीदी गयी गाय और पैर की जूती ही मानी जाती है । नारियाँ भी अपनी सहनशीलता, सरलता, ममता तथा कोमलता से पुरुष के निंद्य अत्याचारों को सहती रहती हैं । इन यातनाओं को सहते हुए भी आत्म समर्पित होकर अपने दुखों को भूलकर पति के सुखों का ध्यान रखती हैं । किन्तु पति का कठोर हृदय उनकी दीनता को देखकर भी पसीजता नहीं । वह इस तरह के उत्पीड़क कार्य करते हुए अपना गौरव अनुभव करता है ।

गृहस्थी से सम्बन्धित अनेकों कार्यों का संचालन स्वयं नारी को ही करना पड़ता है । उसके बनने-बिगड़ने से लेकर सुरक्षा व्यवस्था तक की अनेकों समस्याएँ एवं समाधान सामने आते हैं । इनमें प्रत्येक सफलताओं का दोष नारी के मत्थे मढ़ दिया जाता है । नारी इसी में सन्तोष कर लेती है कि उसका पति उसे भोजन का आश्रय दे देता है । किन्तु क्या भोजन भी उसे वही मिल पाता है जो उसका पति स्वयं खाता है । रूखा-सूखा, बचा हुआ जितना भी उसे मिल जाता है उसी में वह सन्तोष कर लेती है, किसी प्रकार की नुक्ताचीनी नहीं करती ।

पुरुष अपने आपको पत्नी के लिए देवता से कम नहीं मानता । पत्नी स्वयं भी उसे देवता ही मानती है एवं उसकी सेवा में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देती । वह सेवा में ही अपना उद्धार मानती है जब कि पति-पत्नी से केवल मशीन की तरह ही काम करवाता है । उसके थकने की भी कोई कल्पना नहीं करता । अपने धर्म में कमी नहीं आने पाए इसलिए वह आज्ञा पालन करती रहती है । पुरुष सोचता है कि उसकी न कोई भावना-इच्छा है, न वह अच्छे व्यवहार की अधिकारिणी है और न ही उसे सुख-सुविधाओं को भोगने का अधिकार है । यन्त्रवत् काम करते रहने पर भी उससे व्यवस्था में थोड़ी सी भूल होने पर भयंकर गर्जना करने वाले यह भूल जाते हैं कि नारी के बिना उनका गृहस्थ जीवन अधूरा है । इसमें उसका सहयोग असाधारण है ।

जहाँ पत्नी से अनेकों इच्छाएँ-आशाएँ अपेक्षित हैं वहीं मानवीयता के आधार पर पति से भी कुछ अपेक्षाएँ अनिवार्य हैं । उन्हें चाहिए कि वे नारी को अपनी अर्द्धांगिनी समझकर उसके सुख एवं विकास हेतु भावनाओं को समझें और अपना सहयोग दें । घर गृहस्थी के छोटे-बड़े कामों में हिस्सा-बाँट कर अपनी ही महानता की वृद्धि करता है । किसी काम में कोई भूल या गलती हो जाए तो उसे प्रेम से समझाकर- सुधार करके क्षमा कर देना समझदारी है । कभी-कभी कोई अच्छे काम किए जाने पर पत्नी की प्रशंसा करके कुछ उपहारादि की व्यवस्था कर देना उसके सम्मान को बढ़ाने तथा विकास में प्रोत्साहन हेतु बड़ी ही लाभदायक होता है । ऐसा तो है नहीं किन्तु इसके विपरीत उन्हें हमेशा गाली तथा तिरस्कार सहना पड़ता है । इससे मन कुण्ठित हो जाता है और सहयोग के बजाय असहयोग का वातावरण बन जाता है ।

अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करते रहना एवं अधिकारों का ही ठप्पा जमाना अन्याय एवं असंगत है, एक पक्षीय भी । स्वयं पुरुष को इस मामले में उदारतापूर्वक व्यवहार करके आदर्श पति की भूमिका निभानी चाहिए । यह नारी की इच्छाओं की पूर्ति करने, पारिवारिक सुख-शान्ति की वृद्धि एवं उन्नति करने का उत्तम माध्यम है । नारियाँ भी अपने पति में कुछ गुणों की अपेक्षा करती हैं । जिसके सहारे अपने जीवन की नाव बाँधी जाती है, उस खूँटे की मजबूती की आशा रखना स्वाभाविक है । पति में वे उदारता, विनोदप्रियता, व्यवहार कुशलता, सहयोगिता, परिश्रमशीलता, कर्तव्यपरायणता, ईमानदारी, शारीरिक पुष्टता, शिष्टता एवं शुद्ध-निष्कपट जीवन आदि गुणों को चाहती है । नारी का सारा जीवन ही पुरुष की उन्नति-अवनति, आदर-अनादर, सफलता-असफलता, सुख-दुख के साथ बँधा होता है । अतः पुरुष अपनी गैर जिम्मेदारी से नारी के जीवन को घृणित, अपमानित, दुखित न बनाए-इसका ध्यान रखना ही उसका परम कर्तव्य है ।

कम पढ़ी-लिखी, कुरूप, काली पत्नी से सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर उसे निभा लेना पुरुष के लिए गौरव की बात है । रूप लोलुपता के मोह में अनेकों निर्दोष महिलाएँ तिरस्कृत होती रहती हैं और उनके जीवन का सारा सुख नष्ट हो जाता है । यह कैसी विडम्बना है कि पुरुष स्वयं कुरूप रहने पर भी सुन्दर लावण्य युक्त पत्नी चाहता है । रूप सौन्दर्य से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है । किन्तु इस बात को लेकर पारिवारिक सुखों की बलि दे देना कितना तर्क हीन है ।

मानवीय जीवन में देने से ही सच्चा सुख मिलता है अन्यों से लेने में नहीं । परिवार की इस छोटी सी दुनियाँ में भी उसका पालनकर्ता विकृत दृष्टिकोण वाला रहे तो उसके आश्रितों की क्या दुर्दशा हो सकती है-यह सभी समझ सकते हैं । पति-पत्नी के दोनों पक्षों से विचारों की साम्यता तथा सेवा-सहयोग, आदर सम्मान देते रहने का कर्तव्य निभाया जाय तो कितना सुख प्राप्त किया जा सकता है । न तो पुरुष स्वयं अपने आप में पूर्ण है न नारी । दोनों के समन्वय से ही पूर्ण गृहस्थ बनता है । फिर नारी से ही सारी अपेक्षाएँ करना निराधार है । वह अपने माता-पिता एवं सारे रिश्ते-नातों को छोड़कर जिसके आश्रित रहने आई है वह भी उसका सहयोग न करे तो यह कितना अव्यावहारिक है । पिछले दिनों नारी को तिरस्कृत करते रहकर पुरुष ने काफी सुख भोगा है । अब समय नहीं रहा कि वह नारी को पीड़ा देता रहे । चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक । पुरुष उसे जीवन सहचरी समझे तथा अपना अहं त्यागकर उसका सम्मान करे । पत्नी की इच्छाओं के अनुरूप अपने गुणों को विकसित कर दुर्गुणों को त्यागने में वह अपना कर्तव्य समझे और गृहस्थ धर्म का पालन करे ।

सहधर्मिणी के प्रति कर्तव्य-निष्ठ रहिए !

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष में शरीर संरचना को छोड़ कर और कोई भेद नहीं रखा है । उसका कारण कुछ प्राकृतिक आवश्यकताएँ भर हैं, अन्यथा जीवन, श्वांस, हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि, आँखें और मांस दोनों में एक जैसे ही हैं । उन प्राकृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साथ रहना भी जरूरी है और यहीं से वे पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित करते हैं, जो क्रमशः मन, मस्तिष्क, हृदय, अन्तःकरण तथा प्राणों की एकता तक सघन हो जाता है । प्रेम और आत्मीयता का पाठ मनुष्य परिवार से ही आरम्भ करता है, यहाँ तक कि परिवार के बिना उसका जीना दूभर हो जाता है ।

परिवार निर्माण और उसकी अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक-दूसरे का कार्य तथा दायित्व विभाजन एवं उन्हें पूरा करने की परम्परा चली, जो उचित भी है । एक व्यक्ति निर्वाह के साधन जुटाता है, तो दूसरा उसे उपयोग लायक बनाए, एक बाहर का क्षेत्र सम्हालता है, तो दूसरा अन्दरूनी व्यवस्थाएँ देखे । यहाँ तक बात समझ में आती है और ठीक भी लगती है । परन्तु इसी कारण एक अपने को बड़ा समझने लगे और दूसरे का शोषण करे, यह जरा भी उचित नहीं जँचता । दोनों अपने-अपने कार्यों को ही लक्ष्मण रेखा समझ लें और किन्हीं भी परिस्थितियों में एक-दूसरे का काम न सम्हालें, यह विकृति नहीं, तो क्या है ? स्त्री के जिम्मे घर के काम-रसोई बनाना, सफाई करना, बच्चों की देखभाल करना आदि कार्य हैं और पुरुष ने बाहर कमाना, खेती या नौकरी-पेशा करना अपने लिए रखा है । परन्तु वह समय पर आवश्यक होते हुए भी घर के अन्दरूनी कार्यों को करने-देखने में अपनी हेठी समझता है । महिलाएँ तो बेचारी आये वक्त पर पुरुष के क्षेत्र में भी काम कर लेती हैं, पर बीमारी और रुग्णावस्था में भी पति पत्नी से ही यह अपेक्षा करता है

कि वह उसे खाना बनाकर खिलाए और बच्चों को सम्हाले । जिस आधार पर सहचरत्व धर्म का पालन करने के लिए दाम्पत्य जीवन आरम्भ किया गया, यह तो उसकी उपेक्षा ही हुई ।

विवाह के समय वर और वधू दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि हम परस्पर एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य-निष्ठ रहेंगे, एक-दूसरे का सहयोग करेंगे और दोनों प्रगति के पथ पर एक साथ अग्रसर होंगे, पर आगे चलकर प्रतिज्ञा अधूरी ही रह जाती है तथा पुरुष जहाँ पत्नी के काम करने में अपना छोटापन समझता है, वहीं पत्नी को पुरुष के क्षेत्र में पदार्पण करने से भी रोकता है ।

अपने-अपने कार्यों को ही अपनी अन्तिम सीमा-रेखा मान लेना किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं कहा जा सकता । सचाई तो यह है कि पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं । दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर ही जीवन पथ पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकते हैं । सहयोग की दृष्टि से कामों का विभाजन बात और है, परन्तु ऐसी कोई कठोर मर्यादा नहीं बनाई जा सकती कि अमुक कार्य केवल पति ही करे और अमुक कार्य के लिए पत्नी पर ही निर्भर रहा जाय । औचित्य का तकाजा यह है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर वफादार और कर्तव्य-निष्ठ साथी की तरह एक-दूसरे के कामों में मदद करें, चाहे वे कार्य घर के हों, चाहे बाहर के ।

पत्नी-स्त्री प्राय: अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटती, पर पति अपने आपको घर का मुखिया (स्वामी) समझने के कारण दूसरे कार्यों में हाथ लगाना अपनी अवमानना समझता है । जैसे पत्नी को परिवार के सभी सदस्यों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता है, लेकिन कभी वह बीमार हो जाय तो पति खुद भोजन बनाने की अपेक्षा पत्नी से ही यह आशा करता है कि वह बीमारी की हालत में ही खाना बनाकर दे । या वे होटल में खाने अथवा बच्चे घर में हों तो उनके हाथ से खाना बनवाने की ही बात सोचेगा । पत्नी के होते हुए उसे चूल्हा फूँकने में शर्म आती है ।

सहज भाव से पत्नी ने किसी कारणवश पति को भोजन बनाने के लिए कह भी दिया तो पति महोदय इस प्रकार तुनक उठेंगे जैसे सरे बाजार उन पर किसी ने जूता फेंक दिया हो ।

पत्नी को अपना साथी-सहचर मानने वाले, उसे सहधर्मिणी समझने वाले ऐसे अवसरों पर कभी भी संकोच नहीं करते । प्राचीनकाल में तो यह व्यवस्था भी थी कि लड़कियों की भाँति लड़के भी पाक विद्या और गृहकला सीखते थे । गुरुकुलों के आचार्य अपनी पत्नी के साथ ही सभी बच्चों की देखभाल करते और भोजन बनाने से लेकर आश्रम की सफाई करने तक किसी भी काम में संकोच न करते थे । राजा नल पाक विद्या में पारंगत थे और इसी गुण के कारण ऋतुपर्ण के सारथी के रूप में उन्हें दमयन्ती ने पहचाना था । जनक को पाक कला का विशेषज्ञ समझा जाता था, यद्यपि वे सम्राट थे । गदाधारी भीम अज्ञातवास के समय राजा विराट के यहाँ रसोइए के रूप में नियुक्त हुए थे ।

प्राचीनकाल की ही बात क्यों करें, इसी युग में महात्मा गाँधी का उदाहरण ताजा है । वे कस्तूरवा के साथ रसोई में काम करने और आश्रमवासियों को खाना परोसने के बेहद शौकीन थे । स्वामी विवेकानन्द अपने हाथों से स्वादिष्ट खाना बनाते थे । जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री आदि प्रख्यात नेता अपनी पत्नी के हर कार्य में सहयोग देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे । कमला नेहरू जब अपने आखिरी दिनों में बीमार रहने लगीं तो नेहरूजी ने कई बार घर के अन्दरूनी काम देखे । हमारे यहाँ कोई भी महापुरुष ऐसा नहीं रहा है, जिसने घर के कामों को-जिनके लिए केवल पत्नी पर ही निर्भर रहा जाता है-करने में संकोच अनुभव किया हो ।

भोजन बनाने की तरह ही पति और बच्चों के कपड़े धोने, घर की सफाई करने, देखभाल और साज-सम्हाल रखने के कार्य भी पत्नी के समझे जाते हैं । इसके अतिरिक्त परिवार का कोई भी सदस्य जब बीमार

पड़ता है तो उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए भी पत्नी को ही नियुक्त किया जाता है । लेकिन जरूरत पड़ने पर पति उसके गीले कपड़े निचोड़ने या उसके वस्त्र उठाकर रखने में भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं । सेवा का क्या यही मूल्य चुकाया जाना चाहिए ? कहाँ तो हम उसे गृह लक्ष्मी, अर्धांगिनी और सहधर्मिणी घोषित करते-करते नहीं अघाते, और कहाँ उसका छोटा-सा काम करने में भी घबड़ाते हैं ।

कई परिवारों में स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं । उन्हें जरा भी अवकाश नहीं मिलता । दूसरी ओर पुरुष बहुत-सा समय व्यर्थ आलस्य में पड़े रहने, मौज-मजे करने और ताश-शतरंज खेलने में ही गुजार देते हैं । जबकि जरूरी यह है कि यदि अपने पास समय हो तो उसे पत्नी के सहयोग में लगाया जाय, ताकि उसका कार्य जल्दी पूरा हो और थकान, तनाव से जितना सम्भव हो सके, उसे बचाया जा सके ।

काम-काज में सहयोग करना तो दूर, अनेकों लोग अपनी पत्नी के प्रति सहानुभूति भी नहीं रखते, उल्टे अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रमों से उसे परेशानी में डालते रहते हैं । रात को देर तक साथियों से गपशप मारना, सिनेमा-मनोरंजन गृहों से देर से घर लौटना, उधर बेचारी पत्नी भोजन बनाकर थकी-माँदी भूखी बैठी उनकी बाट जोहती रहती है । भारतवर्ष में पत्नी को इतना क्षुद्र बना दिया गया है पतिव्रत के नाम पर कि वह बेचारी पति के खाना खाने से पहले कुछ खा-पी भी नहीं सकती । भले ही पति होटलों में चाटते फिरते हों ।

दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए इन बातों के अतिरिक्त और भी ऐसी कई सावधानियाँ रखने की आवश्यकता है, जिनका एक मोटा आधार यही हो सकता कि हम पत्नी के प्रति सच्चे भावनिष्ठ रहें । उसमें और अपने में कोई छोटे-बड़े का भेदभाव न रखें । प्रेम और हार्दिक एकता में न कोई छोटा है और न बड़ा । अतः उन्हें बराबर का साथी मानकर ही व्यवहार करें ।

पत्नी को दासी नहीं, साथी मानिए

जिन आधारों पर परिवार की सुख शान्ति निर्भर करती है उनमें मुख्य है पति-पत्नी का सघन सहयोग । सौभाग्य से हमारे परिवार पश्चिमी देशों की अपेक्षा अधिक स्थिर और सुदृढ़ हैं । यहाँ माना जाता है कि बाप के घर से बेटी की डोली निकलती है तो पति के घर से ही उसकी अर्थी निकलेगी । एक पत्नीव्रत और एक पतिव्रत भारतीय संस्कृति का आदर्श है, परम्परा है । इसी आधार पर पति-पत्नी के सम्बन्ध स्निग्ध, मधुर और प्रेमपूर्ण रहते हैं, जबकि पश्चिमी देशों में सोते समय खर्राटे भरना भी तलाक का कारण बन जाता है । सम्भवतः ही वहाँ कोई ऐसा दम्पत्ति हो जो कल के लिए एक दूसरे से आश्वस्त हों, जबकि भारतीय परिवारों में पति पत्नी जीवन मरण के साथी हैं ।

इतना होने पर भी परिवार को पूर्णतया आदर्श नहीं कहा जा सकता । इसका कारण है पति-पत्नी के बीच रहने वाली ऊँच-नीच की खाई और बड़े छोटे का भेद । सेव्य-सेवक का सम्बन्ध तथा स्वामी-दास का अन्तर । आधुनिक युवक-युवतियों में परम्परागत विवाहों के प्रति विक्षोभ उत्पन्न हो रहा हो तो इसके लिए मात्र वे ही दोषी नहीं है । दोषी उनके अभिभावक और विशेष रूप से पिता हैं जो गृहणियों से दूसरी श्रेणी का व्यवहार करते हैं ।

लड़कियों को आरम्भ से ही शिक्षा दी जाती है कि उन्हें घर के अन्य लोगों की सेवा करनी है । उनका काम केवल पति व परिवार के अन्य सदस्यों की सुख-चिन्ता भर करना है । अपने सम्बन्ध में कुछ सोचना नहीं है । जब उनके सामने ही लड़कों को-भाइयों को उनकी अपेक्षा अच्छी सुविधाएँ दी जाती हैं तो उनके मन में एक हीनता की भावना जन्म लेती है और लड़कों के मन में मिथ्या अहंकार उत्पन्न हो जाता है । हीनता की यह भावना लड़कियों में कई कुण्ठाओं को जन्म देती है तो लड़कों में अधिकार और अहंकार

पूर्ण बड़प्पन के भाव को । इसकी अपेक्षा दोनों को ही त्याग-बलिदान करने, एक-दूसरे की सुविधाओं का ध्यान रखने की शिक्षा दी जाय तो सेवा शिक्षा दोहरे प्रयोजन पूरे करती है । उससे न लड़कियों में ही हीनता की ग्रन्थि बनती है और न लड़कों में मिथ्या अहं का भाव, बल्कि दोनों एक-दूसरे की सेवा को अपना कर्तव्य मानकर अपेक्षाकृत अधिक स्नेह और प्रेम पूर्ण सहयोगी जीवन व्यतीत कर सकते हैं । लेकिन इस स्थिति के लिए गहरे प्रयत्नों की आवश्यकता है, बहुत सी भ्रान्तियों को तोड़ देना तथा आदर्शवादी धारणाओं को स्थापित करना आवश्यक है ।

आज के बच्चे भविष्य में अपना दाम्पत्य जीवन सुखद, स्निग्ध और मधुर बना सकें, इसके लिए विवाहित दम्पत्तियों को-माता-पिताओं को अपने दृष्टिकोण में सुधार करना चाहिए । तभी बच्चों के सामने दाम्पत्य जीवन की आदर्श मिशाल रखी जा सकती है । बच्चा अपने माता-पिता से जितना सीखता है उससे भी अधिक उनके संस्कार ग्रहण करता है । जिनका सीधा सम्बन्ध उनके व्यवहार, आचरण और रहन-सहन के प्रभाव से है । माता-पिता आपस में जैसा व्यवहार करते हैं, बच्चे भी यह मानने लगते हैं कि पति पत्नी के बीच घर परिवार में ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए ।

पति अक्सर यह समझता है कि उसके लिए पत्नी एक दासी से अधिक नहीं है । कहने, सिद्ध करने में आदर्शवादिता की बातें कितनी ही कही जाती हों, पर आस्था और मान्यता तो अन्तः प्रेरित आचरण और व्यवहार से ही व्यक्त होती है । नारी के समानाधिकार और उसके व्यक्तित्व को स्वीकार करने के लिए आग्रही प्रवक्ता कितने ही मिल जायेंगे, परन्तु वे अपने विचारों को स्वयं कितना व्यवहार में लाते हैं, यह प्रवचन-उपदेश अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन से नहीं, कर्मों और आचरणों से ही पता चलता है । नारी मुक्ति की आवाज उठाने वाले

कितने ही लोग अपने व्यावहारिक जीवन में पत्नी से उसी प्रकार व्यवहार करते हैं, जिस प्रकार कि उनके पुरखे नारी को मात्र गृहिणी मान कर करते रहे थे ।

दैनिक कामकाज से छुट्टी पाकर शाम के समय पति जब घर लौटता है तो वह सोचता है कि पत्नी उसके हाथ-पाँव दबाये, या उसे घर पहुँचते ही तत्काल खाना बनाकर गरम-गरम परोस दे । परम्परागत भारतीय परिवारों में यह भी समझा जाता है कि पत्नी को सबसे बाद में खाना खाना चाहिए, भले ही पति महोदय बाहर मित्रों के साथ नाश्ता कर आये हों या पार्टी में हो आये हों । साथ ही यह मानने वालों की भी कमी नहीं है कि बच्चे खिलाना या उनका ध्यान रखना केवल पत्नी का ही काम है, उसमें उनको हाथ लगाने की जरा भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे तो दिन भर काम करके थक चुके हैं । काम से थक जाने की बात ही इस मान्यता का आधार है तो यह भी देखना चाहिए कि घर में पत्नी भी कोई खाली नहीं बैठी रही है । उसे भी दिन भर काम में खपना पड़ा है । इस आधार पर पति महाशय अपना यह अधिकार समझें कि दिन भर में वे थक चुके हैं तो पत्नी भी उनसे कम थकी नहीं होती है । सुबह पुरुषों से पहले जाग कर नाश्ता बनाने, खाना तैयार करने, घर की सफाई, वस्त्रों की धुलाई और बच्चों की देखरेख में शाम हो जाती है और सोना भी सबके बाद में होता है तो थकने के अधिक कारण तो पत्नी के साथ ही हैं । पति से कहीं अधिक श्रम उसे ही करना पड़ता है । थकान मिटाने के लिए किसे किसकी सेवा करनी चाहिए अब यह निर्णय आसानी से किया जा सकता है ।

लेकिन निष्पक्ष निर्णय के लिए विचार मन्थन के बाद न्यायपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद भी पति इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा कि सेवा की पहली अधिकारिणी पत्नी है । क्योंकि उसके मन में यह अहंकारमूलक धारणा बैठी है कि पत्नी की सेवाओं का

लाभ उठाने का जन्म सिद्ध अधिकार मुझे है ।

कदाचित पुरुष स्वामी होने का दम्भ इसलिए रखते हैं क्योंकि कमाने, उपार्जन करने, निर्वाह व्यवस्था जुटाने का कार्य वे ही करते हैं । बचपन से पालित अहंकार और दम्भ के कारण वे अपना दर्जा भी पत्नी से अधिक बड़ा मानते हैं । यदि कार्य के आधार पर ही बड़प्पन का मूल्यांकन किया जाय तो भी पत्नी का पक्ष ही अधिक वजनदार सिद्ध होता है । उपार्जन से भी अधिक दायित्वपूर्ण है उसका नियोजन । कमाने से भी मुश्किल है खर्च करना । निर्वाहोपयोगी साधन जुटाने से भी गम्भीर और कठिन है उस व्यवस्था के चलाने और निर्धारित करने का काम । यह सारा दायित्व पत्नी को ही सम्भालना पड़ता है और साथ ही साथ अन्य अतिरिक्त कार्य इतने अधिक हैं जो पत्नी की तुलना में कम नहीं अधिक ही श्रम साध्य हैं ।

पति का दर्जा बड़ा सिद्ध करने लिए दी जाने वाली तमाम दलीलें थोथी हैं । मूल बात है–पति की अहं भावना, पुरुष का दर्प, जिसके कारण वह अपनी धर्मपत्नी के साथी के समान व्यवहार नहीं कर पाता और न ही उसे इस योग्य समझता है । इसके दुष्परिणाम व्यक्तिगत रूप से ही नहीं, पारिवारिक और सामाजिक संदर्भों में भी हानिकर होते हैं । परिवारों में बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रारम्भ से ही इस कारण समुचित ध्यान दे पाना कठिन हो जाता है कि माताएँ अनपढ़ और अशिक्षित होती हैं । समाज की आधी जनसंख्या को शेष आधे भाग का बोझ अपने कन्धों पर ढोकर इसलिए खींचना पड़ता है कि लड़कियाँ इस योग्य नहीं होतीं कि वे अपनी जिम्मेदारियाँ खुद पूरी कर सकें ।

यदि पत्नी के प्रति दासी भाव न रखते हुए साथी का दृष्टिकोण रखा जाय तो लड़कियाँ भले ही निरक्षर शादी करें परन्तु योग्य और सद्भाव सम्पन्न पति के सान्निध्य में रहकर वे अशिक्षित रह ही नहीं सकतीं । साथी की भावना, मैत्री का आदर्श अपने सहयोगी मित्र को किसी भाव

अयोग्य और पिछड़ा देखना सहन नहीं कर सकते । लेकिन यह भावना कितने पुरुषों में विकसित होती है ? दाम्पत्य जीवन को कलात्मक ढंग से जीने की आकांक्षा कितने हृदयों में होती है ? अधिकांश तो जैसे-तैसे गृहस्थी को धक्का देते रहने में ही विश्वास करते हैं । इस भावना को तिलांजलि दे ही देना चाहिए ।

जीवन संगिनी से मानवीय व्यवहार करें

बचपन से युवावस्था में प्रवेश करते समय कन्याएँ खिले हुए फूल के समान होती हैं । उनका मुख मण्डल जितना प्रफुल्ल होता है शरीर भी उतना ही पुष्ट रहता है । यौवन को प्राप्त लड़कियों की शादी हो जाती है । उस समय उनकी सुन्दरता और प्रफुल्लित मुखमण्डल पर एक आभा चमकती है, लेकिन विवाह के चार-पाँच वर्ष जैसे बीतते हैं, देखने पर उन्हें पहचाना भी नहीं जा सकता । माँ-बाप सोचते हैं हमारी लड़की को क्या हो गया । फूल सी कोमल और सुन्दर बच्ची इतनी कुम्हला क्यों गयी ? पीला उदास सा चेहरा, गड्ढे में धँसी आँखें, झुकी हुई कमर, बैठने और उठने में ऐसे जैसे शरीर पर बड़ा जोर पड़ रहा हो । क्या हो जाता है इन लड़कियों को ? जिनका विवाह हुए अभी चार-पाँच वर्ष ही हुए हैं और विवाह के समय जो १६-१७ वर्ष की थी, अब २१-२२ की हो गई होगी, लेकिन लगता है जैसे उसकी जवानी ढली जा रही है और वह प्रौढ़ हो चुकी है ।

विवाह के समय माँ-बाप अपनी लड़कियों को विदा करते समय सोचते हैं कि वह ससुराल में जाकर सुखी रहेगी । वहाँ उसे किसी प्रकार की कमी नहीं होगी और वह स्वस्थ, पुष्ट तथा शक्तिशालिनी बनेगी, पर ससुराल में बेचारी कन्याओं पर न जाने क्या मार पड़ती है कि दो तीन वर्ष बाद ही वे मुरझाई हुई, पीले चेहरे की रोगिणी बन जाती हैं । बहुत सी लड़कियाँ तो युवावस्था में ही असमय अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाती हैं । बेशक उनकी मृत्यु का कारण भिन्न-भिन्न रोग होते हैं, पर रोग

तो तभी आक्रमण करने में सफल होते हैं जबकि शरीर कमजोर हो जाता है । क्यों हो जाती हैं लड़कियाँ कमजोर ?

विचार करने पर पता चलता है कि विवाह के कुछ वर्षों बाद ही प्रौढ़ स्त्री जैसी लगने वाली लड़कियों की कमजोरी, रुग्णावस्था और मृत्युपाश में बँधे होने की जिम्मेदारी उनके पतियों पर है । लड़की विवाह के पाँच-छः वर्ष बाद तक तीन चार सन्तानें उत्पन्न कर चुकी होती हैं, न भी हुई हों सन्तान तो उसे पति के कामुक अत्याचारों का उत्पीड़न सहना पड़ता है । जिन स्त्रियों को अपने पति के ऐसे अत्याचार सहने पड़ते हैं उनमें से कई की हड्डियो में जीर्ण या पुराना बुखार बैठ जाता है और वे क्षय की शिकार हो जाती हैं । कई को गर्भाशय सम्बन्धी रोग आ घेरते हैं, बहुतों को घृणित यौन रोग लग जाते हैं और अनेकों स्त्रियों का स्नायु मण्डल दुर्बल हो जाता है तथा वे तरह-तरह की मानसिक बीमारियों से आक्रान्त हो जाती हैं ।

अधिकांश भारतीय नागरिक ऐसे हैं जिनकी पाँच से अधिक सन्तानें हैं । यों इन दम्पत्तियों के यहाँ आठ-दस सन्तानें जन्म लेती हैं । परन्तु कमजोर और दुर्बल शरीर के कारण वे असमय ही मर जाती हैं । इतनी सन्तानों में से चार-पाँच सन्तानों का जन्म स्त्री की ३०-३५ वर्ष की आयु में ही हो जाता है । प्रसव के समय बहने वाला खून, रक्त को दूध में बदलने की प्रकृति प्रक्रिया, तज्जनित शारीरिक कष्ट स्त्रियों को इस उम्र में ही खोखला बना देते हैं और उनके स्वास्थ्य को चौपट कर डालते हैं । यद्यपि उनकी कमजोरी और कमजोरी के कारण होने वाले रोगों के आक्रमण से बचाव के लिए इलाज तो किया जाता है परन्तु इलाज में किया गया वह खर्च बेकार रुपया फेंकने जैसा सिद्ध होता है, क्योंकि जिस कारण वह कमजोरी आई है और जिस वजह से ये तमाम रोग उत्पन्न होते हैं उनके मूल कारण की ओर तो हमारा ध्यान नहीं जाता । वह मूल कारण है बहु-प्रजनन का ।

कहने को लोग अपनी पत्नी के प्रति प्रिया, परम प्रेमास्पद, जीवन संगिनी, अभिन्न सहचरी और हृदय साम्राज्ञी जैसे न जाने किन-किन विशेषणों का प्रयोग करते हैं । पर जब देखते हैं कि वे अबलाएँ अपने स्वास्थ्य में बारूदी डायनामाइट लगवाने पर विवश हैं, सन्तान पर सन्तान जन्म देने के लिए बाध्य हैं और पति के हाथों खेली जाने वाली एक गुड़िया, वासना पूर्ति का खिलौना मात्र बनने के लिए मजबूर हैं तो बड़ा आक्रोश आता है पुरुष की चालाकी भरे वाक्‌चातुर्य पर कि वह उन्हें इन विशेषणों का विष दे रहे हैं । यदि एक बार हम उसे प्रिया की दृष्टि से नहीं सही, मानवता की दृष्टि से ही देखें और उसकी स्थिति पर उदारतापूर्वक विचार करें तो अपने कुकृत्य के प्रति हमें ही अपने आप पर ग्लानि होने लगेगी । साथ ही यह भी सोचें कि उसके जर्जर हो चुके स्वास्थ्य पर, उस रोगिणी नारी पर हम दिन प्रतिदिन क्या-क्या अत्याचार करते जा रहे हैं तो भी हमारा विवेक शायद कुछ सोचने-समझने के लिए करवट बदले ।

किन्तु जिनकी आँखों पर एक बार कामुकता का चश्मा चढ़ गया है-जो वासना तृप्ति को ही चरम सुख माने हुए हैं उनके दृष्टिकोण में यह परिवर्तन इतना आसान नहीं है । कामुक व्यक्ति को अन्धा कहा गया है । उसे विवेक नहीं सूझता, उचित-अनुचित का निर्णय करना उसे नहीं आता ? क्या वांछनीय है और क्या अवांछनीय इसका निश्चय जो नहीं कर पाता वह अपनी भ्रान्त मन:स्थिति को बिना झखझोरे नहीं बदल सकता । ऐसे व्यक्तियों को नारी न तो प्रिया लगती है और न जीवन संगिनी । उसे पत्नी केवल भोग सामग्री ही लगती है, यहाँ तक कि वह उसे रुग्णावस्था में भी नहीं बख्शता । इस अतिशयता के कारण पति ही अपनी पत्नी को अशक्तता, कमजोरी और रोगों की ओर धकेलता है । वे पाप हम स्वयं खुद ही करने लगते हैं जिन्हें अन्य लोग वेश्यागामिता के द्वारा करते हैं । क्योंकि व्यभिचार तो व्यभिचार है, भले ही वह पत्नी

के साथ हो या पर नारी के साथ । खून घर के किसी सदस्य का किया जाय या बाहर के आदमी का, दोनों ही एक ही स्तर के अपराध हैं । कानून घर के व्यक्ति का खून करने वाले को भी कहाँ बख्शता है ? इसी तरह घर में किए जाने वाले व्यभिचार को क्षम्य कैसे कहा जा सकता है ?

यह एक दण्डनीय अपराध है कि किसी को मंद विष दिया जाय अथवा ऐसी अखाद्य वस्तु खिलाई जाय जिसके कारण खाने वाले पर प्राणों का संकट उत्पन्न हो जाय । यौन-अत्याचार के द्वारा क्या पत्नी के लिए वैसा ही अपराध नहीं किया जाता ? एक बार के प्रजनन में स्त्री के स्वास्थ्य को इतनी क्षति पहुँचती है कि उस क्षति की पूर्ति आगामी कई वर्षों तक नहीं हो सकती, जबकि लोग अपनी पत्नी को हर साल एक बच्चा पैदा करने के लिए मजबूर कर देते हैं । क्या यह उसके जीवन पर संकट उपस्थित कर देने जैसा अपराध नहीं है । पति-पत्नी साथी-संगी हैं तो इसलिए ही न कि वे एक-दूसरे का सहयोग करते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर हों । इसलिए तो नहीं कि पति अपनी पत्नी को वासना की वेदी पर चढ़ा कर उसके स्वास्थ्य और उसके यौवन को फाँसी लगा दे । इस मान्यता को किसी भी रूप में उचित नहीं कहा जा सकता कि नारी सुन्दर और आकर्षक होने के कारण भोग्या है । असुन्दर तो पुरुष भी नहीं है, नारी उस पर कहाँ अत्याचार करती है ? वह तो बेचारी इतनी असहाय बना दी गई है कि पुरुष की इच्छाओं के सामने अपने को एक खिलौने के रूप में प्रस्तुत करते रहने के अलावा उसके पास कोई चारा नहीं है ।

वासना बुरी नहीं है । प्रकृति में जीवन व्यवस्था चलती रहे इसके लिए उसकी एक सीमा तक पूर्ति आवश्यक भी है, पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उसके उन्माद में पागल होकर दूसरे पक्ष पर बर्बर आक्रमण करते रहा जाय तथा कुछ ही समय में निर्दयतापूर्वक

उसका रंग, रूप और स्वास्थ्य लूट कर उसे अस्थि पंजर बना दिया जाय । सुनते हैं किसी जमाने में कोई अत्याचारी शासक हुआ थो जो निरपराध व्यक्तियों को केवल मनोरंजन के लिए बड़ी बुरी तरह मरवा दिया करता था । हत्या करवाने का ढंग भी बड़ा क्रूरतापूर्ण था । वह आदमी की एक-एक बोटी नुचवा कर उसे तड़पता देखता था । पता नहीं ऐसा कोई राजा हुआ या नहीं पर आज हम हर उस पति को इसी तरह का निर्मम और क्रूर कृत्य करते देख सकते हैं जो अपनी फूल सी सुकुमार पत्नी को कुछ ही वर्षों में हड्डियो का ढाँचा भर बनाकर छोड़ देता है ।

इतना ही गनीमत नहीं है । लोग पत्नी का स्वास्थ्य चौपट करने के साथ-साथ उस पर सात-सात आठ-आठ सन्तानों का उत्तरदायित्व भी डाल देते हैं और उसकी जीवन भर के लिए हँसी खुशी छीन लेते हैं । यह सारे अत्याचार इस आधार पर किए जाते हैं कि हम उसकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, उसकी सुख-सुविधाओं का घ्यान रखते हैं । थोड़े से अन्न और थोड़े से वस्त्र के लिए नारी पर इस तरह के जघन्य अत्याचार किए जायँ तो यही कहना पड़ेगा कि पुरुष अभी वास्तविक सभ्यता से बहुत पीछे बर्बर युग में रह रहा है । ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में थोड़ी-बहुत प्रगति उसने भले ही कर ली हो पर मानवता की दृष्टि से वह अभी काफी पिछड़ा हुआ है ।

आँकड़े बताते हैं कि पुरुषों को अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक बीमार पड़ती हैं । कैन्सर जैसे शारीरिक और यौन रोगों के साथ उन्माद, हिस्टीरिया, स्मृति भ्रम जैसे मानसिक रोग भी स्त्रियों में ही ज्यादातर फैले हुए हैं । इसका कारण बहु प्रजनन और कामुक अत्याचार है । वैज्ञानिक भी अब इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि दो सन्तानों के जन्म में कम से कम छः वर्ष का अन्तर रहना चाहिए तथा इस बीच उसे स्वास्थ्यप्रद पौष्टिक आहार और चिन्ता मुक्त वातावरण मिलना चाहिए । यदि बच्चे

जल्दी-जल्दी होते हैं या प्रसव के समय अच्छा पौष्टिक आहार नहीं मिलता है तो उसका स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । रक्त में बड़ी कमी आ जाती है और बच्चे को दूध पिलाने से शरीर पनप नहीं पाता । बच्चे का पोषण माँ के दूध से ही तो होता है । उसके विकासमान शरीर के लिए वयस्क व्यक्ति से अधिक पौष्टिक तत्व चाहिए और उन पौष्टिक तत्वों को बच्चा केवल माँ के दूध से ही प्राप्त करता है । इस प्रकार माँ जो कुछ थोड़ी बहुत पौष्टिक चीजें खाती है, वह दूध के रूप में बच्चा पी लेता है, इसलिए माँ को अधिक पौष्टिक पदार्थ मिलना चाहिए ।

तथ्य यह है कि पौष्टिक पदार्थ एक तो आसानी से मिलते नहीं । दूध, घी, मेवा और चिकनाई बाजार में काफी मँहगे दामों पर प्राप्त होते हैं और साधारण परिवार उन्हें खरीद नहीं पाता । फलस्वरूप प्रजनन के कारण जो दुर्बलता आती है वह जीवन भर बनी रहती है । बची खुची शक्ति बच्चा दूध के रूप में पी लेता है । फिर भी बार-बार प्रजनन ! निश्चित ही यह स्थिति स्त्रियों के लिए प्राण घातक संकट उत्पन्न कर देती है ।

हमारे देश में यदि स्वस्थ स्त्रियों को खोजा जाय तो उनका प्रतिशत एक भी नहीं होगा । कोई बेहद दुबली पतली अस्थि पिंजर मात्र है और कोई बात विकार के कारण बहुत ही ज्यादा मोटी और स्थूल । समय से पूर्व तो लगभग सभी स्त्रियाँ वृद्ध हो जाती हैं और असमय में ही यौवन चुक जाने के कारण यौवन के साथ-साथ उनके जीवन का आकर्षण, स्फूर्ति और हँसी-खुशी का सूर्य भी अस्त हो जाता है । स्वस्थ दशा में जो प्रफुल्लता और उल्लास दिखाई देना चाहिए, वह स्त्रियों में नहीं दिखाई देता ।

बहु प्रजनन, बार-बार प्रजनन से नारी अन्दर ही अन्दर खण्ड-खण्ड होकर टूट-फूट जाती है । यदि कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तान को

जन्म लेने से रोक भी दिया जाय तो मूल कारण फिर भी विद्यमान है- वासना का वह खुला खेल । यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रजनन रोक देने से ही क्षति बन्द हो जाती है । इस उपभोग में भी स्त्री शरीर की शक्ति का कम अपव्यय नहीं होता । जीवनी शक्ति फुलझड़ी की तरह जल कर केवल कोयला ही रह जाती है । नुकसान पुरुष का भी कम नहीं होता । इसलिए आवश्यक है हम अपनी जीवन संगिनी के प्रति मानवीय दृष्टिकोण से विचार करें और उसके प्रति किए जाने वाले नृशंस अत्याचार को बन्द करें ।



मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा